संयुक्त अरब इमारात
से प्रकाशित हिन्दी की पहली पत्रिका

निकट

सम-सामयिक साहित्य की अर्धवार्षिकी

वर्ष-4, अंक-4, नवम्बर 2010

प्रमुख संपादक • **अशोक कुमार**
संपादक • **कृष्ण बिहारी**
सह-संपादिका • **कांता भाटिया**
मास्को ब्यूरो प्रमुख • **अनिल जनविजय**
लंदन ब्यूरो प्रमुख • **तेजेन्द्र शर्मा**
लखनऊ ब्यूरो प्रमुख • **रजनी गुप्त**
गल्फ ब्यूरो प्रमुख • **सरस्वती राजशेखरन**
भोपाल ब्यूरो प्रमुख • **आदित्य यादव**

संपादकीय कार्यालय :
P.O Box No. 52088
Abudhabi, UAE
Mobile-00971505429756, +554561090
email : krishnatbihari @ yahoo.com

मूल्य :
भारत में पचास रुपए
खाड़ी में बीस दिरहम
यू.के. और अमेरिका में पांच डॉलर

आवरण :
प्रज्ञा पाण्डेय

प्रकाशक :
कप्तान इंटरनेशनल

ले-आउट और सज्जा :
नोवा पब्लिकेशन्ज़

कानूनी सलाहकार
श्री राजेश तिवारी, एडवोकेट
2/241, विजयखण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ,
उत्तर प्रदेश, भारत।

नोट
'निकट' में प्रकाशित रचनाओं से सहमत होना, हमारी सहमति नहीं है। किसी भी विवाद का निपटारा लखनऊ हाईकोर्ट में ही होगा।

❑

इस अंक में

		पृष्ठ सं.
प्रमुख संपादक की कलम से- ...'निकट' की अपनी राह		2
संपादकीय 'समय से बात' - 4		3
आपकी बात : आपके पत्र		8
साक्षात्कार		
प्रख्यात लेखिका नासिरा शर्मा से अमरीक सिंह दीप की बातचीत		11
कहानियां		
तुम उसी दुनिया में रहते हो जो तुमने बनाई है	- जया जादवानी	19
चिंदियां	- रजनी गुप्त	27
दो पन्ने की औरत	- गीताश्री	34
तूफ़ान की डायरी	- इला प्रसाद	39
मज़बूत कदम	- विजय शर्मा	44
कौन सी ज़मीन अपनी	- सुधा ओम ढींगरा	51
खेल	- डॉ. उषा राय	57
एक सुबह आप्रवासन कार्यालय में	- अर्चना पेन्यूली	60
लघुकथाएं		
लता शर्मा, राजवंत राज		65
कविताएं		
अंजना संधीर, रचना श्रीवास्तव, डॉ. जोराम आनिया ताना, सुशीला पुरी, रेखा मैत्रा और प्रज्ञा पाण्डेय की कविताएं		68
गीत		
निर्मला जोशी और पूर्णिमा वर्मन के गीत		76
समीक्षा		
आइने में अक्स पर दया दीक्षित		78
सिनेमा		
मीना कुमारी की ज़िन्दगी और फिल्मों पर आकांक्षा पारे		80
लेख		
बदलता समाज और उसे रेखांकित करती लेखिकाओं पर बलवंत कौर		82

अगला अंक - निकट - अप्रैल 2011 को

■ **प्रमुख संपादक की कलम से....**

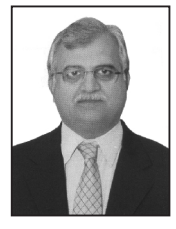

... 'निकट' की अपनी राह ...

'निकट' का यह चौथा अंक है। जिस स्तर पर पाठकों ने इस पत्रिका के प्रति अपना स्नेह प्रकट किया है वह हमें उत्साहित कर रहा है। हमने यह महसूस किया है कि अच्छे साहित्य के प्रति लोगों में चाह है और उसकी प्रतीक्षा वे उत्सुकता से करते हैं। पाठकों के प्रायः सभी पत्रों को हम उनके स्तम्भ में न केवल जगह दे रहे हैंब ल्किउ नकेस ुझावोंप रप त्रिकाके स्‍ वरूपक ोअ ौर स्वीकार्य बनाने की कोशिश भी हर अंक में हो रही है। पत्रिका की प्रशंसा किस संपादक को अच्छी नहीं लगती। लेकिन प्रशंसा वही चाहिए, जो हमें पत्रिका की कमियां बताए वही हमारा। कुछ अपरिहार्य कारणों से पत्रिका के पिछले अंक समय पर प्रकाशित नहीं हो पाए। लेकिन यह शिकायत जल्द ही दूर की जाएगी। पत्रिका का एक अंकम ार्चम ेंअ ौरद ूसरा ि सतम्बरम ें ' हिन्दीि दवस'के अवसर पर निकालने की योजना को हम कार्यरूप देना चाहते हैं। अब तक जो अंक निकले हैं वे सभी विशेषांक थे, यह अंक भी विशेषांक है। भविष्य में हमें कोई विशेष अंक निकालना होगा तो वह उस पैमाने को ध्यान में रखते हुए निकलेगा अन्यथा हम पत्रिका को सहज रूप में निकालेंगे।

'निकट'क ात ीसराअ ंकभ ीि वशेषरू पस ेच र्चित हुआ है। इसमें हमने अपने आस-पास के पड़ोसी देशों की कहानियों को स्थान दिया। हम दो कहानियां श्रीलंका के साहित्यकारों की भी चाहते थे लेकिन कोशिश के बाद भीए ेसान हींह ोप ाया।इ सक मीक ोह मअ पनेअ गले अंकों में ज़रूर पूरा करना चाहेंगे।

'हंस', 'नया ज्ञानोदय' और 'दैनिक जागरण' ने अपने स्तम्भों में 'निकट' की फिर चर्चा की है। सम्पादकों एवं रचनाकारों से सर्वश्री राजेन्द्र यादव, रवीन्द्र कालिया,य ोगेन्द्रम ोहन,र ाजेन्द्रर ाव,ड ॉ०ज यन ारायन, हरि भटनागर, दयानंद पाण्डेय, आलोक शुक्ल, प्रभु झिंगरन, भारत भारद्वाज, राकेश बिहारी, सुशील सिद्धार्थ, मुशर्रफ आलम ज़ौकी, अशोक मिश्रा, सुभाष सिंगाठिया और आदित्य यादव ने अपनी पत्रिकाओं या अपने स्तम्भों में 'निकट' की चर्चा करके हमारा उत्साह बढ़ाया है। मैं सबके प्रति आभार व्यक्त करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि हिन्दी साहित्य से जुड़े और प्रतिबद्ध लोग आज भी हैं और वे एक पत्रिका को दिशा निर्देश देना न केवल अपनीि ज़म्मेदारीम ानतेह ैंब ल्किि दलस ेच ाहतेह ैंि क पठनीय साहित्य आम पाठक को सहज उपलब्ध हो सके। हमारी कोशिश उनके सुझावों को यथा सम्भव लागू करने की होगी।

अशोक कुमार

❑

■ **समय से बात – 4**

सम्पादकीय

'निकट' के पिछले सम्पादकीय अब भी चर्चा में हैं। मेरा मानना है कि यदि पत्रिका में सम्पादकीय नहीं है तो वह एक बेचेहरा पत्रिका है और यदि सम्पादकीय समय से बात नहीं करता तो उसका होना न होना कोई अर्थ नहीं रखता।

आज जब मैं यह लिख रहा हूं तो पत्रिका को उस मुकाम की ओर बढ़ते देख रहा हूं जहां हम इसे ले जाना चाहते हैं। देश और दुनिया में कई बातें ऐसी हुई हैं जो हमें सोचने पर मज़बूर कर रही हैं। एक ओर आर्थिक मन्दी का दौर है तो दूसरी ओर दुनिया में सहज चेतना विकसित हो रही है। लोग कहते थे कि अमेरिका का ईसाई समाज कभी किसी काले या किसी औरत को अपना राष्ट्रपति स्वीकार नहीं करेगा। दुनिया ने देखा कि लोगों का कहना बदल गया। आज अमेरिका का राष्ट्रपति एक काला आदमी है। कल वहां कोई औरत भी यह कमान संभाल सकती है। क्या इस सम्भावना का संकेत भारत ने दुनिया को बहुत पहले नहीं दे दिया है कि देश की सर्वोच्च कुर्सी पर महिला भी बैठने की उतनी ही योग्यता रखती है जितना कि कोई पुरुष। आज हिन्दुस्तान में राष्ट्रपति, लोकसभा अध्यक्ष और देश की सबसे बड़ी राजनीतिक पार्टी कांग्रेस की चेयर पर्सन के अलावा सबसे बड़े प्रदेश की मुख्यमंत्री महिलाएं हैं। और यह सब ऐसे समय में है जब महिला आरक्षण बिल पास होने की जद्दोजहद से गुज़र रहा है। गो कि, जहां तक मेरा सवाल है, मैं वंचितों के आरक्षण को छोड़कर हर तरह के आरक्षण का विरोधी हूं।

आर्थिकमंदी के मामले को समझने के लिए मैं एक छोटी-सी कहानी का उल्लेख कर रहा हूं जिसे मैंने यहां किसी अंग्रेजी के अखबार में चार-पांच महीने पहले पढ़ा था। एक बूढ़े आदमी का कुत्ता किसी दुर्घटना में घायल हो गया। डॉक्टर ने बताया कि कुत्ते के इलाज़ में करीब पांच हज़ार डॉलर खर्च होंगे। बूढ़े के पास पैसे नहीं थे। उसकी मदद के लिए एक देनदार सामने आया। उसने कहा कि मैं आपके घर पर आकर आपको पैसे दूंगा। वह बूढ़े के घर आया। पहले अच्छी तरह हालात समझे और तब बूढ़े को समझाया कि आपका घर मरम्मत चाहता है। आपकी कार कबाड़ी के यहां जाने की स्थिति में हैं और आप कई लोगों के कर्ज़ में हैं। मैं आपको इन सब कष्टों से मुक्ति दिला दूंगा। आप हमारे बैंक का क्रेडिट कॉर्ड लेकर अपने कुत्ते के इलाज़ से लेकर अपनी सामाजिक स्थिति तक में सुधार ला सकते हैं। देनदार की कुटिल बुद्धि के कारण वह बूढ़ा आदमी करीब़ एक लाख डालर के कर्ज़ में डूब गया। बूढ़ा यहां अक्षमता का प्रतीक है। कुटिलता ने जब पूरी दुनिया को अक्षम कर्ज़दार बनाया तो यह नहीं सोचा था कि यही कर्ज़दार उसे भी कर्ज़दार बना देंगे और फिर मुद्रा मूल्यहीन हो जाएगी। घर-बार, गाड़ी-घोड़ा, गृहस्थी का सारा सामान कर्ज़ में। यह तो होना था। कम खाओ, गम खाओ की बात जो बड़े बूढ़े कह गए थे, वह लोगों ने अनसुनी की तो अंजाम दूसरा क्या होना था! प्रेमचंद की 'सवा सेर गेहूं' कहानी तो याद है न! दुनिया के सामने एक कठिन वक्त खड़ा है। यह एक चुनौती है जिसे किसी एक देश को नहीं बल्कि समूची दुनिया को इस तरह से लेना होगा कि सब एक साथ संभल सकें। इतिहास गवाह है कि ऐसा वक्त पहली बार नहीं आया है। मैंने अभी कहीं पढ़ा है कि 1920 में भी ऐसा ही कुछ हुआ था कि दुनिया के सामने हर सड़क किसी बन्द गली की तरह हो गई थी मगर वह वक्त भी गुज़र ही गया ......जरूरत अपनी चादर देखकर पैर फैलाने की है..........

❑

दुनिया के कई देशों में जूते चले। हिन्दुस्तान में भी चला। अपने देश में मुहावरा भी है 'जूता मारना'। इस जूता प्रकरण पर मैंनेक ईत रहस`स ोचा ाप हलेत ोय ह िकज ूताम ाराह ीक यों जाए ? दूसरे यह कि जूता क्यों न मारा जाए ? अगर एक जूता सिर्फ लहरा देने भर से सज्जन कुमार और जगदीश टाइटलर का टिकिटक टग यात ोए`सेज ूतेत ोअ ौरच लनेच ाहिएथ` ाज ब जन प्रतिनिधि या प्रशासनिक अधिकारी अपने दायित्व से विमुख हों और जनता के किसी भी विरोध प्रदर्शन को बरदाश्त करने का माद्दा खो चुके हों तो सिवाय जूते के और क्या चलना चाहिए ? इनकी अकाउण्टबिलिटी केवल जूता ही सामने ला सकता है। कुछ लोग कहेंगे कि यह असंसदीय तरीका है। सवाल यह है कि जो कुछ ये कर रहे हैं वह कहां से और कितना संसदीय है! आज एक जुलाई 2009 को अभी-अभी स्टार न्यूज़ में सुन रहा हूं कि आंध्र प्रदेश के महबूब नगर में कांग्रेस के लोक सभा सदस्य मांडा जगन्नाथ ने ड्यूटी पर कार्यरत बैंक अधिकारी को थप्पड़ मारा। यह दृश्य मैंने टी.वी. पर देखा भी। मैं श्रीमती सोनिया गांधी से पूछना चाहता हूं कि जनता आपकी पार्टी के इस सेवक को कितने जूते मारे कि यह बदतमीज़ छठी का दूध याद करे ? इसे कांग्रेस की प्राथमिक सदस्यता से हमेशा के लिए निष्कासित करके आप देश के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करें तो आपकी छवि सबकी निगाह में और साफ होगी।

❑

हमारे देश में यह धारणा थी कि राजनीति में केवल और केवल गुण्डई जीत सकती है। यह धारणा भी इस आम चुनाव में बदल गई। मतदाताओं ने टुच्चे और लुच्चे नेताओं को सिरे से नकार दिया। देश के कुछ नेता जो अपने प्रारम्भिक दिनों में बहुतइ ंमानदारअ ौरज ुझारूथ`व`स मयक ीन ब्ज़क ोख ुदस` दूर करते हुए इतने अहंकारी हो गए कि उनके चेहरे पर सिवाय रावणी दंभ के कुछ और नहीं था। ये नेता अपने इस आचरण कोअ पना ागमिकस मझतेथ`अ ौरद`शक ीद ुनियाइ सेइ नका मैनरिज्म मानती थी। बेहूदगी भरे इनके आचरण को लोग कॉमेडी भी समझते थे। हंसते थे। चाटुकार इनकी तारीफ करते थे और ये नेता खुश होते थे। ठीक वैसे ही जैसे कभी श्रीमती इन्दिरा गांधी अपनी किचेन कैबिनेट के सदस्यों के व्यवहार को ही दुनिया का व्यवहार समझती थीं और खुश होती थीं। श्रीमती गांधी तो जल्दी ही समझ गई थीं कि ग़लती कहां हुई लेकिन ये मदान्ध नेता तब तक नहीं समझे जब तक मतदाता ने इन पर थूकन हीं ि दया ाय`ल ोगोंक ोअ पनेद रवाज़ेप रद ुतकारतेह ुए खुद को स्वयम्भू मानने लगे थे। लेकिन स्थिति अभी पूरी तरह पाक-साफ नहीं हुई है। इस चुनाव में भी राजनीति के मैदान के सारे बाहुबली अभी पटखनी नहीं खाए हैं। कुछ ग़लत तत्व इस बारभ ीस ंसदम ेंप हुंचग एह ैं ाम ैंद`शक ीयु वाप ीढ़ीस`य ह उम्मीद करता हूं कि उनके योगदान के अगले दो चुनाव बाद देश की संसद में एक भी अपराधी नहीं पहुंचेगा। जिस दिन देश के युवा यह कर दिखाएंगे, दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र सचमुच सबसे बड़ा हो जाएगा। मैं हिन्दुस्तान की संसद में वह दिन देखना चाहता हूं जब लोक सभा सदस्य अपनी योग्यता और जनता की सेवा के बल पर कदम रखें। किसी किस्म के आरक्षण की बैशाखी का सहारा किसी को कोई मदद न दे। बाहुबल को जनता इस तरह नकार दे कि गुण्डों को अपनी गुण्डई पर शर्म आए और वे चुल्लू भर पानी में अपना तर्पण खुद करें। जाति और धर्म के समीकरण टूटने शुरू हो गए हैं। यह एक अच्छी सुबह का आगाज़ है।

❑

मैंने दो साल पहले मायावती को उनकी अप्रत्याशित जीत पर बधाई देते हुए अपने सम्पादकीय में एक टिप्पणी की थी और उम्मीद की थी कि यदि उन्होने अपने शासनकाल में पांच प्रतिशत भी न्याय और कानून व्यवस्था को सुधारा तो दिल्ली की गद्दी पर बैठने का उनका सपना अवश्य पूरा होगा और देश राजवंश या वंश परम्परा के दबाव से मुक्त हो सकेगा। मायावती ने वैसा नहीं किया जैसा मैंने सोचा था। मायावती ने वह किया जिसकी मुझे आशंका थी। असल में हर व्यक्ति का एक चरित्र होता है और वह कभी नहीं बदलता। आज स्थिति

यह है कि मायावती का चेहरा सिर्फ गुस्सा दिखा रहा है। वह भी अपनी ही जाति के लोगों पर। यह गुस्सा उन्हें खुद पर दिखाना था लेकिन वैसा उनके आचरण में कभी पहले भी नहीं रहा। दूसरों पर तो उन्हें शुरू से ऐतबार नहीं था। अब उनके तथाकथित अपनों को उन पर ऐतबार नहीं रह गया। दिल्ली और उनके बीच की दूरी अब इतनी बढ़ गई है कि दिल्ली उनसे हमेशा के लिए दूर हो गई है। असल में मायावती भी उसी पीढ़ी की राजनीतिज्ञ हैं जिन्हें प्रजा को प्रजा समझने में परपीड़क आनन्द मिलता रहा। जब उस पीढ़ी को देश ने धत्ता बता दिया तो मायावती किस खेत की मूली हैं। भाषा और व्यवहार पर उनका नियंत्रण पहले भी नहीं था। सत्ता में आने पर तो यह बिल्कुल खत्म हो गया है और वे भूल गई हैं कि शालीनता भी समाज की एक अनिवार्य आवश्यकता है। शालीनता को नापने का कोई पैमाना नहीं होता लेकिन वह रिकॉर्ड अगर किसी ने तोड़ा है तो उसका नाम है राहुल गांधी।

❑

राहुल गांधी को सभी राजनीतिक दल के नेता बच्चा समझते रहे और अपनी बेवकूफाना फब्तियां उन पर चस्पा करते रहे। किन्तु राहुल ने किसी नेता को पलट कर बेअदब ज़वाब नहीं दिया। हां, उनकी ओर से अपनी सदाबहार मुस्कान से सदी की सबसे हसीन युवती प्रियंका ने ज़रूर कुछ नेताओं को मुंह तोड़ उत्तर दिए। लेकिन प्रियंका ने भी मर्यादित रहते हुए राजनीतिक पैंतरे चले। मुझे लगता है कि शालीनता का अपना संस्कार होता है और यह इंसान को विरासत में मिलती है। अगर किलो के भाव से मिलती तो हमारे नेता ज़रूर संस्कारवान होते। परिणाम सामने है और तथाकथित दबंग न जाने किन पतली गलियों में मुंह छिपाए दुबके हैं। देश ने चुनाव के नतीजों पर संतोष व्यक्त किया। संतोष इस बात का कि नयी पीढ़ी को हम जितना ग़ैरज़िम्मेदार समझते हैं वह उसके उलट है और अपने सामाजिक दायित्व की उसे चिन्ता है। इसके बावजूद कि कांग्रेस सबसे बड़ा राजनीतिक दल है, उसे ब्लैकमेल करने में डी.एम.के. के नेताओं ने जो बेशर्म आचरण किया उससे सबसे ज़्यादा दुखी तमिल हुए। एक ही परिवार के कितने लोग मंत्री बनने की मांग को लेकर कोपभवन में गए इसे डी.एम.के. नेता करूणानिधि से बेहतर कौन बता सकता है! मुझे तो पहली बार जानकारी मिली कि दशरथ की तरह इनकी भी तीन रानियां थीं। अब सिंहासन पाने के लिए घमासान घर में ही नहीं होता तो दुनिया इतिहास को दुहराए जाते हुए कैसे देखती!

❑

प्रोजेक्शन सबको अच्छा लगता है। चाहे वह कला में हो, साहित्य या संगीत में हो या कि जीवन में हो। लड़कियों के जींस पैंट पहनने पर उत्तर प्रदेश में हंगामा हो रहा है। योरप को छोड़ें, अरबी लड़कियां जींस पहन रही हैं। वाइटल स्टैटिस्टिक्स का ख़याल रखने वाली तो पहनती ही हैं। मोटी-मोटी और बेहद भद्दी दिखने वाली औरतें भी पहन रही हैं। कहीं कुछ नहीं हो रहा है। लेकिन हिन्दुस्तान में लोकतंत्र के नाम पर कितनाम खौलह ोगाइ सकीक ल्पनाभ ीन हींक ीज ास कती। पहनावे को लेकर क्या इतनी बेकार और वाहियात बात होनी चाहिए ? यह तो बेवकूफी की हद है! दुनिया न जाने किन विषयों पर अनुसंधान कर रही है और एक हमारे देश के लोग हैं जो भीड़ बन कर दुनिया के सामने तमाशा बनने का कोई मौका नहीं छोड़ते।

❑

'निकट' के इस अंक के लिए मैंने 'हंस' में महिला रचनाकारों के नाम खुले पत्र में सहयोग की अपील की थी। कईल ेखिकाओंस ेब ार-बारि नवेदनभ ीि कयाथ ा ज़ ाहिरह ै कि निवेदन और आग्रह फोन से ही किए थे। ई-मेल भी किए थे। आशा जगी थी कि मनचाहा सहयोग मिलेगा। यादव जी ने भी सुझाया था कि पिछले 15 वर्षों में हंस में लेखिकाओं की प्रकाशित और चर्चित कहानियों का एक खण्ड अलग से दूं तो पत्रिका का स्वरूप नयी बात कहेगा। मुझे यह सुझाव अच्छा भी लगा था। लेकिन मैं प्रतीक्षा कर रहा था कि ज़रा देख तो लूं कि

कितनी रचनाएं मिल रही हैं। अब जब अंक को अंतिम रूप दे रहा हूं तो मुझे यह बताते हुए विचित्र-सा लग रहा है कि जिनसे मैंनें नवेदनअ ौरअ ाग्रहं कयाथ ाउ नमेंस े ि कसीए कन े भ ी रचनान हींद ी ान ासिराश ार्मा,र जनीग ुप्तअ ौरर ाजवंतर ाजन े हंस में छपे मेरे पत्र का उल्लेख करते हुए रचना भेजी। मैं इनकी भावना की कद्र करता हूं। अन्य लेखिकाओं और कवयित्रियों ने स्वत: रचनाएं भेजीं जो इस बात का संकेत है कि 'निकट' को किसी मनबढ़ और नकचढ़े रचनाकार के आगे भीख का कटोरा लेकर नहीं खड़ा होना पड़ेगा। इन रचनाकारों में कई नाम बिल्कुल नए हैं। मैं इन्हें इस विश्वास के साथ पत्रिका में जगह दे रहा हूं कि भविष्य में भी इनका सहयोग हर उस पत्रिका के लिए बना रहेगा जो साहित्य के प्रति अपनी जिम्मेदारियों और सामाजिक तकाज़ों के लिए प्रतिबद्ध है। यादव जी का सुझाव मैं ज़रूर मानता लेकिन मुझे लगा कि गुरूर को छापकर मैं अपमानित होऊंगा। जिन्होंने निवेदन पर रचना नहीं दी उनकी पूर्व प्रकाशित कहानियों को फिर से छापकर न केवल निकट के पन्ने बरबाद करूंगा बल्कि उन्हें गैरज़रूरीम हत्त्वद ूंगां जनकीप ात्रताउ नमेंन हींह ै ार चनाकार कोई हो, मेरी दृष्टि में वायदाफरामोशी नाकाबिलेबरदाश्त है।

❑

पत्रिका की बिक्री का अभी कोई सही प्रारूप हमारे सामने नहीं है। इसे समझने में वक्त लग रहा है। एक सच यह भी है कि बिक्री से हिन्दी की साहित्यिक पत्रिका निकल भी नहीं सकती। उसे निकालने के लिए आर्थिक सहयोग चाहिए और सहयोग, सहयोग होता है। मुझे अनेक पाठकों के पत्र मिले हैं जो पत्रिका को खरीदकर पढ़ना चाहते हैं। उत्साह को बढ़ाने के लिए उनका ऐसा पूछना ही ऊर्जा को दुगना कर देता है। अंक-3के र चनाकारोंक ेप ारिश्रमिकक ी० यवस्थाम ैंनेअ पनें मित्रों के सहयोग से की है। आगे भी कुछ न कुछ व्यवस्था होती रहेगी। मित्रों के सहयोग के बिना ऐसे उद्देश्य पूरे भी नहीं होते। उनका आभार व्यक्त करना उन्हें छोटा करना है।

मेरे पास देश और विदेश से अनेक रचनाकारों ने अपनी रचनाएं भेजी हैं। सबको पत्रोत्तर दे पाना संभव नहीं है। फोन या ई-मेल पता लिखा होने पर मैं तुरन्त संपर्क करता हूं। सबकी रचनाएं मेरे पास सुरक्षित हैं। स्तरानुकूल रचनाओं को अगले अंकों में स्थान मिलेगा।

अगले अंक से हम एक नया स्तम्भ मन दर्पण शुरू कर रहे हैं। जीवन भर हम जिनके साथ होते हैं उनसे हमें शिकायतें भी होती हैं। इस स्तम्भ के लिए रचनाएं आमंत्रित हैं।

❑

श्रद्धांजलि

विष्णु जी का साक्षात्कार निकट-3 में प्रकाशित हो चुका था लेकिन अंक उन्हें मिलता उससे पहले ही उनका निधन हो गया। उनके स्वास्थ्य को लेकर मैं निकट के प्रवेशांक से ही चिन्तित था। एक भरपूर रचनात्मक ज़िन्दगी जीकर एक अजातशत्रु चला गया। साहित्यिक जगत् को अपूर्णनीय क्षति तो हुईह ी,० यक्तिगतरू पस े म ैंनेअ पनाए कऊ र्जावनम ार्गदर्शक खो दिया।

डॉ० प्रतीक मिश्र से मेरा परिचय यूं तो तीस वर्ष पुराना था मगर मुलाकातें बहुत कम हुई थीं। कानपुर शहर के चर्चित गीतकार और अध्येता प्रतीक मिश्र डी.ए.वी.कॉलेज में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे। गत् अगस्त में पुनर्नवा संपादक श्री राजेन्द्र राव के कार्यालय में उनसे मेरी आख़िरी भेंट हुई। स्वस्थ और प्रसन्नचित्त थे। मैंने निकट के लिए उनसे गीत देने का अनुरोध किया था। उन्होंने अबूधाबी के पते पर गीत भेजे। फोन से मैंने उन्हें तुरन्त सूचित किया कि अगले अंक में गीत दे रहा हूं। किन्तु अफसोस कि अचानक एक यात्रा के दौरान ट्रेन में हृदयगति रुकने से उनका असामयिक निधन हुआ जिसकी सूचनाम ुझेंं गरिराजां कशोरज ीके ब लॉगस े ि मली ाय हए क दुखद समाचार था मगर सच था जिसे स्वीकारने के लिए साहस संजोना पड़ा।

लवलीन से मेरा परिचय बारह-तेरह वर्ष पूर्व हंस कार्यालय में हुआ था। मेरी कहानी 'दो औरतें' का हंगामा अभी थमा भी नहीं था कि यादव जी ने लवलीन की कहानी

'चक्रवात' छापकर दूसरा बड़ा हंगामा खड़ा कर दिया। लवलीन इसी कहानी से बहुचर्चित हुई थीं। अपने परिचय के दौरान उनसे मेरी तीन चार मुलाकातें दिल्ली में ही कार्यक्रमों में हुई। पिछली मुलाकात दो साल पहले हुई थी। ऐवान-ए-ग़ालिब में आयोजित हंस के वार्षिक कार्यक्रम में उन्हें बड़ी मुश्किल से सीढ़ियां चढ़ता देख मैं सहारा देने के लिए आगे बढ़ा। जिस्म भारीअ ौरस ँसेउ खड़तीह ुईं। मैनेंउ न्हेंस ीढ़ियोंप र बठाया। उन्होंनेद वाख ाई।अ पनेप ासर खतीथ ीं ि फर सगरेटस ुलगा ली। मुझे पता नहीं क्यों, ऐसा लगा कि गाड़ी बहुत दिन चलेगी नहीं। नया ज्ञानोदय में प्रकाशित भारत भारद्वाज के लेख से पता चला कि लवलीन नहीं रहीं। अस्पताल में उन्होंने अंतिम सांस ली। उनके कई फोटो जो मुझे उन्हें भेजने थे, मेरे पास रह गए।

विनोदश ुक्ला ाय हन ामम ेरेअ स्तित्वक ि हस्साह ैअ ैर मेरी आख़िरी सांस तक रहेगा। दैनिक आज, कानपुर के प्रबंधक विनोद जी से जब मेरा परिचय हुआ तो पता चला कि वह अख़बार के दफ़्तर में ही नहीं बाहर भी सबके भइया हैं। पहले दिन से ही हमारे बीच एक अद्भुत रिश्ता कायम हुआ। मैंने उनके नेतृत्व में दो साल काम भी किया। जब उन्होंने आज अख़बारछ ोड़ाउ सीस मयम ैनेभ ी।उ नकेि बनाम ुझेअ ाजम ें काम करना एक शून्य नज़र आया था। भइया आज छोड़कर दैनिक जागरण की लखनऊ शाखा में प्रबन्धक हो गए और मैं अबूधाबी आ गया। हर साल जब मैं ग्रीष्मावकाश में भारत जाता तो उनसे लखनऊ कार्यालय में मिलता । गत् वर्ष भी मैं मिलने गया तो पता चला कि भइया रिटायर हो गये हैं और कभी-कभी आते हैं। मैं उनके निवास दिलकुशां नहीं जा पाया और पिछले महीने कथाकार श्री राजेन्द्र राव ने फोन पर बताया कि एक दुखद समाचार है- विनोद शुक्ला नहीं रहे। यह सुनना एक आघात था। किन्तु सच था। सहना पड़ा। राव साहब ने ही मुझे 'आज' में फीचर राइटर का काम दिलवाया था जो बाद में नगर प्रतिनिधि के स्थान तक पहुंचा था। भइया मुझे बहुत प्यार करते थे। उनका न होना मेरे दिल के किसी कोने में वह सूनापन छोड़ गया है जिसे शब्दों में व्यक्त कर पाना इस समय गिरा अनयन नयन बिनु बानी वाली बात हो गई है। निकट परिवार और मेरी ओर से इन साहित्यकारों को विनत श्रद्धांजलि।

❑

छपते-छपते

कोशिशोंके ब ावजूदअ ंकल गभगद सम हीनेि वलम्बस े आ रहा है। हमारी कोशिश होगी कि मार्च 2011 से पत्रिका समय से निकले।

जुलाई 1, 2009

कृष्ण बिहारी

❑

आपकी बात आपके पत्र

'निकट' – 3 पर फोन और पत्रों के माध्यम से मिली प्रतिक्रियाएं :

गेट अप बहुत खराब है। पत्रिका का कवर भी ठीक करो। बाकी सब ठीक है। – **राजेन्द्र यादव, हंस संपादक, दिल्ली।**

पत्रिका पूरी पढ़ गया। संपादकीय बेबाकी ने मन को झिंझोड़ा। कहानियों का चयन स्तरानुकूल है। गिरगिट, देखते-देखते और एलिज़ाबेथ कहानियों के अलावा बांग्लादेश, नेपाल और पाकिस्तान से मिली कहानियों ने भी प्रभावित किया। अशोक बाजपेयी की कविता बहुत अच्छी लगी।

– **योगेन्द्र मोहन, निदेशक दैनिक जागरण, कानपुर।**

अंक अच्छा निकला है । सुधार दिख रहा है। विष्णु प्रभाकर का साक्षात्कार, लता शर्मा का उपन्यास अंश, अनामिका की कविताएं अच्छी हैं। आस-पास के देशों से ली गई कहानियों ने पत्रिका का दायरा बढ़ाया है।

– **राजेन्द्र राव, संपादक पुनर्नवा पृष्ठ,**
दैनिक जागरण, कानपुर।

साहित्यिक पत्रिका का कवर हार्ड नहीं होना चाहिए। इसे अगले अंक से ही ठीक करो। संपादकीय अपने समय को हथौड़े मारता है। सामग्री स्तरीय है लेकिन प्रजेण्टेशन कमज़ोर है। – **हरि भटनागर, संपादक रचना समय, भोपाल।**

निकट 3 मिला। सराहनीय प्रयास है। दूर से भी कोई इतना करीब हो सकता है इसका पता इसी से लगता है कि देशों की दूरी भी रचनाओं से मिट सकती है।

– **प्रभु झिंगरन, दूरदर्शन, लखनऊ।**

संपादकीय ने आरक्षण पर जो टिप्पणी की है वह अवसरवादियों की कलई खोलती है। नौकरों का अपने मालिकों की हत्याओं से सम्बद्ध होना भी एक नए नज़रिए से देखा गया है। साहित्यिक पत्रिकाओं की कतार में निकट ने अपनी उपस्थिति दर्ज़ करा दी है।

– **नासिरा शर्मा, नयी दिल्ली।**

मार्च 2009 का निकट मिला। मुख पृष्ठ ने ध्यान खींचा। रस्सी तुड़ा कर भागता घोड़ा और सवाल पूछती स्त्री। विस्फाटित नेत्रों से देखती दो आंखें शायद बेकाबू परिस्थितियां हैं। समय से बात में हर धड़कन पर नज़र है। हर धमाके की अनुगूंज है। 'देखते देखते' कहानी मर्मस्पर्शी है। गंगा के प्रति हमारी लापरवाहियों का लम्बा इतिहास कचोटता है। 'एलिजाबेथ' दुहरी मानसिकता पर चोट करती है। गिरगिट, धूप और नींद तो नहीं टूटी कहानियां अमिट छाप छोड़ती हैं। अनामिका की कविताओं के क्या कहने। स्त्री सत्ता की अभिव्यक्ति, प्रतिबंध, पिंजड़े से पिंजड़े तक कविताएं बहुत सुन्दर हैं। दिनेश मंज़र और इन्दु श्रीवास्तव की गज़लें मन को छूती हैं। सार्थक अंक के लिए बधाई। – **उषा राय, लखनऊ।**

निकट का नया अंक। संपादकीय ने सांस टांग दी । बहुत बेबाक और बहुत सही। कहानियां, उपन्यास अंश तथा अन्य सामग्री पत्रिका के भविष्य के प्रति आश्वस्त करती हैं।

– **सुभाष सिंगाठिया, श्रीगंगानगर, राजस्थान।**

साहित्यिक मित्र अरूण शीतांश से मुझे निकट का अंक मिला था। यू.ए.ई. से पहली हिन्दी पत्रिका देखकर गर्व का अनुभव हुआ। मैं भी यू.ए.ई. के शारज़ाह शहर में हूं। मुझे यह पत्रिका नियमित चाहिए।

– **अर्चना श्रीवास्तव, शारज़ाह।**

निकट 3 मिला। समय से बात में आपने दिल खोलकर बात की है। अच्छा लगा कि पत्रिकाओं की भीड़ में कोई सम्पादक ऐसा भी है। सूरजपाल की कहानी एलिजाबेथ और ज्योति की गिरगिट ने अवसरवादी रिश्तों का खुलासा किया है। माहुर, छापामार का बेटा, विभाजित, दूसरा रास्ता और धूप कहानियां भी नये तेवर की रचनाएं हैं। संतोष दीक्षित की कहानी देखते-देखते ने रुला दिया। गंगा की इस दशा के प्रति उत्तरदायी कौन है ? अनामिका की कविता में स्त्री के भीतर बहता दर्द है। इन्दु श्रीवास्तव की ग़ज़लों मे नयापन है। प्रतीक

मिश्र के दोनो गीत बहुत प्यारे हैं। निकट 4 के लिए शुभकामनाएं। **– प्रज्ञा पाण्डेय, लखनऊ।**

दैनिक जागरण के पुनर्नवा पृष्ठ से मुझे निकट का पता चला। मुझे इसके सभी अंक चाहिए। कैसे मिल सकते हैं? कितना भुगतान करना होगा और कैसे ?

– विनय कुमार दास, बालासोर उड़ीसा।

निकट3 द`खाअ ौरप ढ़ा।स म्पादकीयक ाय हत`वरब ना रहे। बहुत-बहुत बधाई। मेरा सहयोग हमेशा रहेगा। इस 'समर' में आप अकेले नहीं हैं। – **अंशु जौहरी, अमेरिका।**

निकट 3 को नेट पर पढ़ा । एक अच्छी पत्रिका निकालने के लिए बधाई। – **विजय शर्मा, जमशेदपुर।**

निकट के तीनों अंक पढ़े। पत्रिका साहित्यिक मूल्यों के प्रतिस जगह` ।म`ैनेब हुत दनोंब ादअ पने० यस्तज ीवनम`ेंस` समय निकालकर जो निकट को पढ़ना शुरू किया तो एक बार फिर से लगा कि हिन्दी से दुबारा नए रिश्ते बना रहा हूं। एक बेहतर प्रयास के लिए मेरी शुभकामनाएं।

– नरेन्दर बतरा बैंक ऑफ बड़ोदरा अबूधाबी।

दैनिक जागरण के माध्यम से मुझे आपकी पत्रिका का पता चला । मैं अपनी रचना भेज रहा हूं। क्या यह आपकी पत्रिका के अनुकूल है ? – **उमा प्रसाद शर्मा, बहराइच उ.प्र.**

आपकी रचना मैं प्रकाशित करूंगा। अच्छी ग़ज़ल है। मगर समय लगेगा। – **सम्पादक — निकट**

नया ज्ञानोदय से आपकी पत्रिका निकट के बारे में पता चला। देश से दूर रहते हुए भी आप हिन्दी के लिए जितना कुछ कर रहे हैं वह एक बड़ा काम है।

– तेज राम शर्मा, अनाडेल, शिमला।

निकट3 प ढ़ग या।प त्रिकाम`ेंस `स्मरणक ीक मीख ाली। स्तरीय सामग्री के लिए बधाई। – **अभिषेक मयंक।**

अगला अंक महिला रचनाकार अंक क्यों ? क्या कभी पुरुष रचनाकार अंक देखा है ? – **प्राण शर्मा, लंदन।**

आपकी पत्रिका निकट से मिलकर बहुत खुशी मिली। यू.ए.ई. से इस स्तर की पत्रिका का प्रकाशन कठोर परिश्रम की बात है। हिन्दी में मेरा दखल बहुत नहीं है फिर भी मैंने पत्रिका पढ़ी। इसका साहित्यिक मूल्य अशेष है। विभिन्न देशों के रचनाकारों की कहानियों ने निकट को सबके पास लाने की भूमिका निभाई है। गिरगिट, कन्या तथा अन्य कहानियां बहुत अच्छी हैं। कविताएं और ग़ज़लें भी समय के साथ हैं। स्त्रियां कविता में नारी का सुख-दुख है। पिंजरे से पिंजरे तक कविता बहुत अचछी लगी।

– सचिन दत्ता, सम्पादक बांग्ला पत्रिका ओव्क्तन, पश्चिम बंगाला।

निकट का दैनिक जागरण में जिक्र। हंस में आपका ख़त। अच्छीर चनाके ि लएअ धिकारपूर्वकअ ाग्रह ा निकटक ाक ोई अंक देखा नहीं है इसलिए पत्रिका के स्तर से अनजान हूं। निकट कैसे मिल सकती है ? – **राजवंत राज, लखनऊ।**

निकट के अंक देखे। पत्रिका में साहित्य की हर विधा को कमोवेश जगह मिली है। कादम्बिनी क्लब के सदस्यों ने पत्रिका पढ़ी है। एक अच्छी पत्रिका दूर देश और सीमित साधनों से निकालने के लिए हमारी शुभकामनाएं।

– सुधा सिंह, लखनऊ।

निकट के अंकों की सूचनाएं बराबर मिल रही हैं। मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई कि आप जैसे हिन्दी प्रेमी विदेश में भी हिन्दी के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

– डॉ. हरीश यादव, देहरादून, उत्तराखण्ड।

निकट के तीनों अंक हमारी आशाओं के अनुरूप हैं और सामग्री का तो कहना ही क्या! आपने विस्तार से अपने सम्पादकीयों में जो कुछ लिखा है वह किसी भी चेतनाशील पाठक को झकझोर सकता है। रजनी गुप्त के उपन्यास अंश सर्जना का साथ को पढ़ना सुखद लगा। मिथिलेश्वर जी की आत्मकथा का अंश भी अच्छा लगा। उनसे भविष्य में भी कुछ लिखवाएं। कविताओं के चयन में थोड़ा ध्यान देने की ज़रूरत है। हार्दिक शुभ कामनाएं। – **सुशीला पुरी, लखनऊ।**

निकट के अंकों को पढ़ने का अवसर मिला। लगा कि आपको पत्र लिखना चाहिए। इतनी अच्छी सामग्री के साथ इतनाब ढ़ियाक ाग़जभ ी।अ ापकास म्पादकीयत ोब`हदप सन्द आया। काफी विस्तार से आपने समय के ज्वलंत मुद्दों पर

बेबाकक लमच लाईहै र जेन्द्रिय दवक िक हानीन ेउ द्वेलित किया। क्या ग़जब कथाकार हैं। निकट की कविताओं ने निराश किया। – **पूजा गोस्वामी, बलरामपुर।**

निकट के माध्यम से आप अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी साहित्य और भारतीय संस्कृति की सेवा कर रहे हैं। आपको अतिशय धन्यवाद। – **हरपाल सिंह 'अरूष' मुजफ्फरनगर।**

निकटके स भीअ ंकर् मलेहैं म ुझेत ुम्हारीक्ष मताओंप र गर्व होता है। पत्रिका को जिन परिस्थितियों में तुम निकालने के साथ-साथ उसे लोगों तक पहुंचा रहे हो वह एक ओर जहां प्रशंसनीयहै व हींय हस ोचनेप रब ाध्यक रताहै ि कत ुमइ से कबतक कर सकोगे? आर्थिक स्त्रोतों के बिना यह काम कितना कठिन है, इसे मैं समझ सकता हूं। तुम्हारी हिम्मत, लगन और साहित्यिक अनुरक्ति को मेरा कोटिश: आशीर्वाद।

– डॉ. रमेश शर्मा, भूतपूर्व हिन्दी विभागध्यक्ष,
वी.एस. एस डी. कॉलेज, नबावगंज, कानपुर।

गुरु जी अपना आशीर्वाद देते रहें। मैं निकट निकालता रहूंगा। आपका स्नेहाकांक्षी कृष्णबिहारी

और अन्त में वयोवृद्ध कवि, समीक्षक श्री विद्यासागर जोशी का एक लम्बा और आत्मीय पत्र।

प्रिय कृष्ण बिहारी,

पत्रिका पाकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई और आश्चर्य भी। मेरा हार्दिक धन्यवाद स्वीकार करो। 'निकट' शब्द पत्रिका के पूरे सन्दर्भ में अत्यंत सार्थक है। प्रथम तो मनुष्य के निकट रहना मनुष्यता की पहली और अन्तिम शर्त है परन्तु इस निकट में एक ऐसी दूरी भी निहित है जिसमें चीज़ें साफ-साफ दिखाई देती हैं जो कि अत्यंत दूरी और निकटता दोनों में सम्भव नहीं होता। यू.ए.ई. में कार्यरत रहते हुए भी तुम भारत से दूर नहीं हो और इतने पास भी नहीं हो कि उसके आए दिन के बेमतलब शोर-गुल और मूर्खतापूर्ण उत्तेजनाओं में लिप्त होकर अपना समयन ष्टक रो ान ब्जक ोप कड़नेके ि लएए कउ चितश ान्त दूरी चाहिए। तुम ठीक ऐसे ही स्थान पर हो। अत: तुम्हारा चिन्तन निश्चित ही व्यक्तियों और विचारों को व्यवस्थित करने में सहायक होगा। यू.ए.ई. की चालीस प्रतिशत आबादी भारतीयों की है जिनकी प्रतिभा और जिनका पौरूषपूर्ण पसीना यहां की स्वर्णिम आभा में चमक रहा है लेकिन उनके अन्दर कहींन क हींए कद ुखताश ून्यभ ीहै ि जसेत ुमअ पनेए कान्त रचनाकर्म से आगे बढ़कर अपने प्रखर सम्पादकीय में चारों ओर देखते हुए भरने की कोशिश में लगे हो। आज हिन्दी लेखन विपुल और विश्वव्यापी हो गया है परन्तु तुम्हारी प्रेरणाभूमि तो भारत ही है इसके बावजूद यह पत्रिका एक तरह से तुम्हारी आधारभूमि बन रही है जो खाड़ी क्षेत्र है इसलिए यहां की प्रतिभाओं को समुचित स्थान मिलेगा, ऐसी आशा है। भारतीय भाई-बहनों से मेरी अपील है कि तुम्हारे इस पावन यज्ञ में तन-मन-धन से सहयोग करें और अपने भारतीय होने के दायित्व का निर्वाह करें। क्योंकि यह ऐसा मंच है जिसे वे गर्व से अपना कह सकते हैं।

तुम्हारी ऊर्जा, योग्यता और उत्कट लगन को देखते हुए मुझे इस पत्रिका के लिए अपार सम्भावनाएं दिखती हैं। यह एक दैवी संयोग है कि एक सार्थक संतुलित विचारक के रूप में भाई अशोक कुमार इस पत्रिका के कई दुर्वह दायित्वों को अपने सिर लिए हुए हैं। आपके मुट्‌ठीभर सहयोगियों को जितनी बधाई दी जाए, कम है।

तुम्हारा जीवन कहानियों को समर्पित रहा है अत: स्वाभाविक है कि पत्रिका का अधिकांश कलेवर उन्हीं से सुसज्जित हो। आज कविताएं सर्वाधिक विवादास्पद हैं फिर भी तुमउ न्हेंछ ोड़न हींस कते।अ ादमीभ लेक विताक ोछ ोड़दे, कविता उसे नहीं छोड़ती। तुमने सागर को समेटने के लिए बांहें फैलाई हैं, मेरा आशिष है कि वह तुम्हारी बांहों में समा जाए।

तुम्हारा आत्मीय

विद्यासागर जोशी
अबूधाबी प्रवास के दौरान
15 मई 2009
स्थायी निवास- ई 7/एल.ए.
अरेरा कॉलोनी, भोपाल।

▪ साक्षात्कार : नासिरा शर्मा से अमरीक सिंह दीप की बातचीत।

नासिरा शर्मा

प्रख्यात लेखिका। अपने उपन्यासों और कहानियों से हमेशा चर्चा में।

चर्चित कृतियां – बहिश्ते ज़हरा, शाल्मली, ठीकरे की मंगनी, अक्षयवट, कुइयांजाम, जीरो रोड सभी उपन्यास, शामी काग़ज, पत्थर गली, इब्ने मरियम, संगसार, सबीना के चालीस चोर, इन्सानी नस्ल, दूसरा ताजमहल, बुतखाना, खुदा की वापसी कहानी संग्रह। इसके अलावा संस्मरण, अनुवाद एवं बाल-साहित्य की रचना।

प्रस्तुत है अमरीक सिंह दीप और नासिरा जी की बेबाक बातचीत

संपर्क– 37/754, चतरपुर हिल्स, नई दिल्ली, – 74, मो. 9811119489

''बढ़िया रचना हमेशा जिन्दा रहती है।'' – **नासिरा शर्मा**

प्रश्न: आपने अपने ईरान की पृष्ठभूमि पर लिखे उपन्यास 'सात नदियाँ एक समुन्दर' के पृष्ठ संख्या – 125 पर लिखा है कि सत्ता के घोड़े ने जो वास्तव में धर्म का लिबास पहने हुए था मानवता की पीठ को लहुलुहान करने वाला आततायी है' तो क्यों धर्म के प्रति इतने दीवाने हैं लोग ? मानवता ही अगर हर धर्म का मूल आधार है तो क्यों इतने ज़्यादा धर्मों में बँटी हुई है दुनिया ?

उत्तर– पूरा उपन्यास इस शिकवे से भरा हुआ है कि सत्ता और सियासत गै़रज़रूरी तरीके से धर्म का इस्तेमाल कर रही है, तभी मैंने धर्म का 'लिबास' का प्रयोग किया है। कौन-सा धर्म है जो हत्या और खून खराबे का समर्थन करेगा ? उपन्यास में एक सवाल की और गूंज है कि आखिर मुसलमान को मुसलमान क्यों बनाया जा रहा है ? आपका दूसरा सवाल इसी सवाल में पेवस्ता है कि दुनिया धर्म को लेकर क्यों दीवानी है ? धर्म गहरा विश्वास बन सदियों से आम इन्सान की यादों और व्यवहार में अपनी जड़ें जमाए हुए है, जो नस्ल-दर-नस्ल एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को देती है। इस बीच बहुत से धर्म गायब हो चुके हैं। उनका कहीं जिक्र पढ़ सकते हैं मगर उनके मानने वाले बचे नहीं है! रहा सवाल धर्मों की अनेकता का तो इतनी बड़ी दुनिया में एक विश्वास कैसे रह सकता है जब भौगोलिक परिस्थितियाँ, भाषाएं, वेशभूषा और रहन-सहन अलग-अलग है। आँधी, तूफान को देवता समझने वालों ने धर्म के नाम पर एकर्ा नयमब नायात ाकिइ न्सानअ पनीब`जाह रकतोंप रर ोक लगा सके। वही इन्सान धर्म को जब बेजा तरीके से प्रयोग करने लगे तो इस में धर्म ग़लत है या आदमी ?

एक सवाल यहाँ मैं करना चाहती हूँ कि एक कलाकार को जब अपने सृजन के लिए धर्म की आवश्यकता नहीं पड़ती एक तकनीशियन और मज़दूर को भी, तब सियासत को मज़हब की ज़रूरत अपनी सत्ता को बचाने के लिए क्यों पड़ती है ? आम इन्सान इन के बहकावे में क्यों आता है यह ज़रूर चिन्ता का विषय है।

प्रश्न: इसी उपन्यास में एक स्थान पर आपने रेखांकित कियाहै ि कइ 'रानम ें श ाहके स ामन्तीश ाासनक ो. खत्मक रने के लिए धार्मिक नेताओं ने एकजुट हो कर सघर्ष किया था। मार्क्सवादियों का यह क़दम क्या मार्क्सवाद की हत्या नहीं थी?

उत्तर– इसी उपन्यास में तय्यबा और उसके साथियों ने आपके इस सवाल का जवाब दिया है जो फिदाइने ख़ल्क अक़लियत पार्टी के थे, जो इस समझौते को ग़लत समझते तभी उन की पार्टी दो फाँक हुई और अकसरियत के नाम से तोदहे पार्टी के नक़शे क़दम पर चलने लगी। फिदाइने ख़ल्क अकलियत की जो भी आलोचनाएं थीं वह समय के साथ सच हुई और जिस बिन्दु को नज़र में रख कर तोदहे अकसरियत व अन्य मार्क्सवादी, गुरिल्ला पार्टियों व गिरोहों ने मुल्लाओं का साथ दिया था कि आम आदमी तक इनकी पहुँच है शाही अंकुश के चलते हमारी पकड़ जनता पर नहीं तो हम एक दिन इन को हटा कर सत्ता में आ जायेंगे। इस जोश में अन्य मार्क्सवादी गिरोहों के छुपे चेहरों के उजागर कर उन्हें जेल में डलवाया, शूट करवाया तब इन्हें ज़रा भी गुमान न था कि दरअसल यह मुल्लाओं के हाथों भुन रहे हैं। सौ साल मार्क्सवादी बुद्धिजीवी, लेखकों, कवियों ने अपनी जान की कुर्बानी दी मगर अन्त में सत्ता में कौन आयेगा ? मार्क्सवादी पालेसी वर्तमान स्थिति में क्या होगी। इसके चलते सब कुछ हार बैठे।

प्रश्न : अपने देश में भी ऐसी ही भूल मार्कसवादियों ने इमरजेंसीके ब ादग ठितह ुई' जनताप ार्टी'म ेंश ामिलह ोक र की थी। इमरजेंसी के बाद कांग्रेस का विरोध करने के लिए एक जुट हुई देश की अन्य राजनैतिक पार्टियों में दक्षिण पंथी पार्टी 'जनसंघ' (जो बाद में नाम बदल कर भारतीय जनता पार्टी हो गई) भी थी और वामपंथी पार्टियां भी। माकर्सवादियों की इस भूल का ही नतीजा है कि आज भारतीय जनता पार्टी जैसी दक्षिण पंथी प्रतिक्रियावादी पार्टी राई से पर्वत बन गई है। माकर्सवादियों द्वारा समय-समय पर किए गए ऐसे गठबंधनों के बारे में आपका क्या कहना है ?

उत्तर – सिर्फइ तनाि कि कसीके प ासक ोईि नष्ठान हीं है। हम इन्हें वोट क्यों देते हैं सिर्फ इस लिए कि वोट देना हमारा अधिकार है ? मैने जीवन में इस अधिकार का केवल एक बार प्रयोग किया और बाद में सख्त शर्मिन्दा हुई।

प्रश्न: दूधनाथ सिंह ने बाबरी मस्जिद विध्वंस पर 'आखिरी कलाम' जैसा अविस्मरणीय उपन्यास लिखा है। भारतवासी होने के बावजूद आपने ईरान की खूनी क्रान्ति पर 'सात नदियाँ: एक समुन्दर' जैसा अदभुत उपन्यास लिखा था। अपने दाम्पत्य जीवन के कारण आप हिन्दू-मुसलमान दोनों ही संस्कृतियों की नस-नस से वाक़िफ हैं। फिर क्यों आपने बाबरी मस्जिद विध्वंस को आज तक अपने उपन्यास का विषय नहीं बनाया ?

उत्तर – हर लेखक हर मुददे पर उपन्यास नहीं लिख सकता है। उपन्यास एवं कहानी तो दूर मैंने इस विषय पर कोई लेख या टिप्पणी भी कहीं विशेष रूप से नही की है। शायद इस का कारण यह हो कि यह एक ऐसा इशू था जिसको ईशू बनाया जा रहा था ? इस से बहुत बड़े सवाल और कठिनाइयां मुस्लिम समाज में हैं उनको लेकर कोई हंगामा क्यों नहीं उठता ? यह एक सियासी अजेन्डा था। इस पर दूधनाथ जी ही लिख सकते थे जिस समाज की बखिया उन्हें उधेडनी थी। उस पर उनकी पकड़ ज्यादा मज़बूत थी। यह अलग बात है कि अयोध्या में हम स्टेज पर मौजूद थे जब कमलेश्वर जी पर हमले का माहौल बना। दिल्ली के उस हाल में भी मैं शाहबानों पर बोली थी जहाँ बुर्के वालियों ने आकर हंगामा करने की कोशिश की थी। अपना उपन्यास 'जिन्दा मुहावरे' उस समय लिख रही थी जो बटवारे के बाद के मुस्लिम समाज पर था। उस में भी मैंने बाबरी मस्जिद का ज़िक्र नहीं किया। दरअसल बटवारे के बाद का भारतीय समाज और बाबरी मस्जिद के ढहने के बाद का भारतीय समाज दो अलग सियासी अनुभव है। इतने कम वक्त में नए उगे मुस्लिम समाज की सही व्यथा पकड़ उसकी जिन्दा अक्कासी नहीं कर सकती थी जब कि उन दिनों फैज़ाबाद और अयोध्या जाना बहुत होता था। तो भी...... सृजन का अपना तर्क है!

प्रश्न: 'ज़ीरो रोड' उपन्यास में आपने भारतीय बेरोज़गार युवकों का खाड़ी देश में पलायन व वहाँ पहुचने के बाद वहां नारकीय स्थितियों में जीवन यापन का मार्मिक चित्रण किया है। खाड़ी देशों में राजनैतिक, धार्मिक व यौनिक पाबन्दियों के बावजूद दिल्ली की खाड़ी देशों की एम्बेसियों के सामने इन देशों में जाने के इच्छुक भारतीयों की लम्बी-लम्बी कतारें दिखाई देती हैं। क्या राजनैतिक, धार्मिक व यौनिक स्वतंत्रता से बड़ी समस्या रोटी है ?

उत्तर– कमअज़ कम हमारे देश में रोटी पहली ज़रूरत है। इसज़ ारूरतके इ र्द-गिर्दब ाक़ीच ीजेंघ ूमतीह ैं।इ सीर ोटीक ी तलाश में आदमी खाड़ी देश जाता है क्योंकि वहां उस को सारी तकलीफोंके ब ादभ रप ेटख ालिसख ानाि मलताह ैअ ौरव ह घररू पयाभ ीभ ेजप ाताह ैज ोभ ारतम ेंउ सेन हींप ्राप्त ाउ स रोटीके च लतेव हह र.कीमतप रख ाड़ीद ेशक याज हन्नुमम ें भी चाहेगा ताकि चन्द वर्ष पेट भर खाना खा सके। कुछ बचा कर ला सके।

प्रश्न: देश की शिक्षा प्रणाली में हो रहे विघटन को लेकर आपने अक्षयवट उपन्यास लिखा, तेज़ी से समाप्त हो रही जल सम्पदा की समस्या को लेकर 'कुइयांजान' उपन्यास लिखा और देश की विदेशों को पलायन कर रही श्रम सम्पदा को केन्द्र में रख कर 'ज़ीरो- रोड' उपन्यास लिखा! इन तीनों ही उपन्यासों केके न्द्रम ेंइ लाहाबादश ाहरह ै ।क याइ सीक ्रम मेंअ ापअ भी और उपन्यास लिखने वाली हैं ?

उत्तर– मेरा चौथा उपन्यास इलाहाबाद, कोटरा बहादुरगंज, लखनऊअ ौरि वदेशके ि कसीद ेशक ाच क्करल गायेगा।उ स में भी एक नई समस्या उठाई है। पूरा हो चुका है। पिछले बारह तेरहव र्षोंस ेअ धूराप ड़ाथ ाि फरइ सकीप ाण्डुलिपिख ोग ई। खोने के बाद चरित्र, पात्रों के नाम, जगह और मुख्य कहानी की रूपर ेखात ोव हीप ुरानीर हीम गरर ोहनक ाि करदारज ोप ूरी तरह विकसित नहीं हो पाया था। वह उभरा है। रोहन दत्त दरअसल हुसैनी ब्रहमण है। पाठक इस उपन्यास को कैसे लेते हैं यह शंका तो हर रचना के लिखने के बाद बनी रहती है।

प्रश्न: आप एक लम्बे अर्से तक इलाहाबाद में रही हैं।

इलाहाबाद शहर की गलियां–मोहल्ले, वहां का लोक जीवन व संस्कृति में रची बसी हुई हैं। इधर आप कई वर्षो से दिल्ली में हैं। इलाहाबाद की महक और दिल्ली की महक में क्या अन्तर महसूस करती है ?

उत्तर– मैं दिल्ली में 1971 से रह रही हूं मगर मेरा रिश्ता इलाहाबादस`क भीक टान हींथ ।ास ालद ोस ालब ादब राबर जाना होता रहा है। अभी छ: माह पहले हो कर लौटी हूं। मेरे रिश्ते दोस्तों से उसी तरह बने हुए हैं फोन पर खैरियत भी ली जाती है। इलाहाबाद हम दोनों की जिन्दगी का एक अहम मुकाम है अब रहा सवाल महक का तो एक फर्क जो मोटे रूप सेम हसूसह ोताह ैव हय हा कप⁄यागर ाजस`उ तरतेह ोप ूरा शहर इलाहाबाद अपना लगता है और दिल्ली पहुँच कर लगता है कि स्टेशन से घर पहुँचना है।

प्रश्न: आपने 'अक्षयवट' उपन्यास में ज़हीर और उसके दोस्तों के माध्यम से दोस्ती और आदर्शवाद के गूलर का फूल हो गए जज़्बे की पुनर्स्थापना की है। वह इस भौतिकवादी बाज़ारवादी युग में क्या सम्भव है ? हालांकि जैसे आज भी पति–पत्नी का रिश्ता ज़रुरी है। इसी प्रकार हर इन्सान के लिए दोस्ती का रिश्ता भी ज़रुरी है!

उत्तर– प्रोफेशनल दोस्तियों की कोई न बुनियाद रहती है नग ारण्टीम गरब चपनअ ौरा कशोरअ वस्थाक ोद ोस्तीइ तनी निच्छल और गहरी होती है कि वह बुढ़ापे तक, बरसों बाद मिलने पर उतनी ही मासूम रहती है जो कुछ अक्षयवट में ज़हीर और मुरली की दोस्ती के रूप में आया है। ऐसे लड़कों को मैं इलाहाबाद, मुस्तफाबाद और दिल्ली रायबरेली में देखती रही हूँ। दरअसल उन्ही लड़कों के भटकाव और प्यार को देखकर ही यह टोली बनी। यह टोली कोई एक बार की देखी हुई नहीं थी बल्कि कई वर्षो से मैं उन्हे देख रही थी। उनकी बेकारी, घर वालों से फटकार अपने लिए कोई सही रास्ता तलाश करने की शिद्दत को मैंने बहुत करीब से महसूस किया था।

प्रश्न: अपने 'शाल्मली' उपन्यास में आपने एक पढ़ी–लिखी उच्च महिला अधिकारी को उसके पति द्वारा हिंसा का शिकार होते दिखाया है। महिला हिंसा विरोधी कानून पास हो जाने के बाद क्या इस स्थिति में कुछ अन्तर आया है ?

उत्तर–फ र्कअ ायाह ैम गरब हुतक म!य हब दलावम र्द की तरफ से आना है कि वह बिना हाथ उठाए भी झगड़े और बहस निपटा ले मगर बचपन से मारपीट की लड़कों में आदत होती है। बॉडी बिल्डर का शौक़ होता है। इस आदत के चलते भी उनका हाथ बड़ी आसानी से उठ जाता है। चाहे वह बाद में जितना भी पछताएं मगर सारे मर्द शर्मिन्दा होते हों ऐसा भी नहीं है। एक सच और भी है कि अकसर औरतें इस हद तक मर्दों को उत्तेजित कर देती हैं कि आपस में जम कर मार मीट होती है। मैंने लड़कियों को लड़कों की पिटाई करते देखा है लेकिन वह पिटने की बात को पता नहीं किस कारण इशू नहीं बना पातेह ैं ाक ानूनक ु छप⁄तिशर्ता हंसाक ोर ोकनेम ेंक ामयाबह ो सकता है मगर खूब पढ़े–लिखे मार्डन औरत–मर्द इस तरह की घरेलू हिंसा करते हैं आखिर बराबरी का दौर है!

प्रश्न: इधर लेखिकाओं में अपनी आत्मकथा लिखने का चलन सा चल निकला है। इन आत्मकथाओं में या तो शहीदाना अन्दाज़ह ोताह ैय ाा फरर ंगनाभ ाव!ज ोए कठ ंडीत टस्थता, एक दूसरे व्यक्ति की दृष्टि से खुद को देखने वाली निस्संगता बहुत कम नज़र आती है। आप ऐसी आत्मकथाओं को किस कोटि की आत्मकथाएं मानती हैं ?

उत्तर–अ ात्मकथाा लखनाब ड़ाम ुश्किलक ामह ै ।अ पने से अपने को अलग कर देखना फिर अपनी अच्छाई बुराई को तौलना और अपनी गलतियों को क़ुबूल करना। एक वजह यह भीह ोस कतीह ैा कज बअ ापक हानी,क विताा लखतेह ैंत ो क़िरदार पर आपका लेखक काफी हद तक हावी हो जाता है और आप किरदार की तराश में कुछ सच छोड़ देते हैं कुछ झूठ मिला देते हैं। वही शैली जब हम आत्मकथा में अपना लेते हैं, जाने–अनजानेत ोब ातब नन हींप ातीह ैत ोभ ोए कश ुरूआत हुई है। हम और ज़्यादा संतुलन की आशा कर सकते हैं।

प्रश्न: आपने एक हिन्दू व्यक्ति से विवाह किया है। दो भिन्न धर्मों व संस्कृतियां होने की वजह से आपके दाम्पत्य में कभी टकराव की स्थिति पैदा हुई है ? कभी कुछ अजीब–सा लगा है ? परायापन–सा महसूस हुआ है ? आप लेखिका है आप धर्मं और संस्कृति से ऊपर उठ कर एक विशुद्ध इन्सान की तरह सम्बन्धों को जी सकती हैं लेकिन आपके पति तो लेखक नहीं हैं, उनकी तरफ से किसी तरह की मुश्किलात तो नहीं पैदा हुई ? ....आप अपनी आत्मकथा, जो कि अन्य हिन्दी लेखिकाओं से निश्चय ही अलग होगी, कथा लिखने का विचार कर रही हैं ?

उत्तर– आप से पहले यह बात कवि नईम ने कही थी कि आप मेरे हमसफर कर के अपने पतिदेव पर किताब लिख डालें। मैंने उन पर तो नहीं लिखा न लिखने को सोचा मगर

अपने साहित्य को लेकर ज़रूर कुछ लिखा है। जिस में मेरा बचपन लेखन और परिवेश है। परिवेश से जुड़े काफी लोग है अपने भी और पराए भी, उस को मैं अपनी आत्मकथा नहीं कह सकती हूं। मुझे बनाने और मेरी खूबियाँ निकालने में कई लोगों का हाथ रहा है। मेरा बचपन का घर, शौहर का घर, मेरे दोस्त,म`रेअ नुभवअ ौरअ नुभूतियाँ ाश ादीके च ार-पाँचस ाल ज़रुर मैं घर, गृहस्थी, माँ और पत्नी का सुख लेती रही मगर पूरे 28 वर्ष मैंने एक एण्टलैक्चुयल जिन्दगी जी जो उन्मुकत उड़ानों से भरी थी। पैरों के नीचे इतनी सख्त ज़मीन बन गई कि जब हालात ने करवट बदली और दूसरे अनुभव हुए जो 28 वर्ष की ज़िन्दगी से बिल्कुल अलग थे मगर उसने मेरे लेखन को प्रभावितन हीं कयाब ल्किय हस ाराऊ बड़ख ाबड़र ास्ताम`रे लेखन का कच्चा माल साबित हुआ।

प्रश्न: आपने प्रेम-विवाह किया है। लेखिका होने के कारण प्रेम को आपने बड़ी शिद्दत और गहराई से महसूस किया है। क्या स्त्री पुरूष के प्रेम में देह की मौजूदगी अनिवार्य है ? एक प्रचलित मान्यता है कि जिस से प्रेम करो उस से विवाह कतई न करो। जुदाई ही प्रेम की कसक को जीवन भर बरक़रार रखती है, उसकी रौशनी को बुझने नहीं देती है। क्या आप भी ऐसा मानती हैं ? विवाह के पूर्व के प्रेम और विवाह के पश्चात के प्रेम में क्या आपने कोई अन्तर महसूस किया है ?

उत्तर– प्रेम और विवाह को लेकर सब के अपने-अपने अनुभव हैं। प्रेम दरअसल एक व्यापक अनुभव का नाम है। फूटता पल भर में है और जब फैलने और बहने पर आता है तो एक ऐसी आबदार नदी बन बहने लगता है कि उसके दोनों तरफअ ाबादियाँब सनेल गतीह`ैं ाम`राअ नुभवश ादीस`प हले सिर्फ इक़रार और चन्द मुलाकातों में साथ रहने का था। जब साथ रहे तो लगा वह रिश्ता तो सिर्फ भूमिका था। ज़िन्दगी तो खूबसूरत वादियों के पेचदार खम से गुजर रही है। बहुत कुछ सीखने और समझने को है। हर दिन, हर पल, हर अवसर पर आपका रिश्ता अगर बढ़े नहीं बल्कि जड़ प्रेम की शिला बन जाए तो उसे न प्रेम कहेंगे न इश्क न उन्स। आपको रोज़ कुछ नया कुछ अच्छा करना पड़ता है उस में सिर्फ आप न हो बल्कि परिवार दोस्त, समाज, सोच, अहसास सब कुछ उसमें समाने की जगह हो मगर होता उसका उल्टा है, लोग इश्क के पहले पहाड़े से आगे बढ़ना ही नहीं जानते हैं और आने वाले खूबसूरत तरीन अहसास और जिन्दगी को खराब कर देते हैं या खो देते हैं। दोष वह शादी को देते है। मगर भूल जाते हैं कि प्रेम के बाग से निकल घर बसाने में उन्होंने एक-दूसरे के लिए कैदखाना बना डाला है।

प्रश्न: आपने दाम्पत्य जीवन के माध्यम से इस्लाम और हिन्दू धर्म को बहुत करीब से देखा है, जाना, समझा और महसूस किया है। दोनों धर्मो में क्या बुनियादी अन्तर है ? जिसकी वजह से हमेशा दोनों धर्मों में टकराव की स्थिति बनी रहती है ?

उत्तर– धर्म में तो ऐसी कोई बात नहीं है। न उस पर ईमान रखने वालों में कोई कमी है मगर जो फसादी और खुराफाती लोग होते हैं उन का यह सारा खेल है जो ज़्यादातर हिंसक हो उठता है। मैंने दो तीन बार सीधे सीधे इस्लाम और मुसलमानों पर बेतुकी बौछारे सुनी है, अपमान से घिरी हूँ, आहत हुई हूँ मगर बदले में मेरे मुहँ से कभी भी कोई अपशब्द प्रतिक्रिया, आक्रोश या दु:ख में नहीं निकल पाया। क्यों ? कैसे ? यह अनुशासन मेरे अन्दर है। मैं नहीं जानती मगर यह ज़रूर जानती हूँ कि मेरी तरह के लाखों लोग और भी हैं। जहाँ कहीं हिन्दुओं के प्रति ग़ैरज़रूरी बाते सुनती हूँ तो सहन नहीं कर पाती,य हीह ालम`रेप तिर ामचन्द्रश र्माक ाभ ाीह`ैअ ौरह मारे सभी दोस्तों का जो एक दो कुंठित थे। वह हमारे साथ रह कर घुल घुला कर निर्मल हो चुके हैं मगर ज़्यादातर लोग न अपने धर्मक ोठ ीकस`ेज ानतेह`ै,न द ूसरोंक`े म गरन फरतक रनेम`ें पीछे नहीं हटते हैं। पता नहीं यह हिंसक प्रवृति उनके अन्दर क्यों ठहर जाती है। पढ़-लिख कर इन्सान खुद कितने दायरे तोड़ता और छोड़ता है मगर अब डिग्री याफ्ता भी इस जिहालत मेंफ`ँसतेज ार हेह`ै ाप तान हींक योंम ुझेम धुसूदनक ीक हानी 'जरहि' इस समय याद आ रही है।

प्रश्न: आप की कहानियाँ वह चाहे 'सबीना के चालीस चोर' हो या 'सगंसार' इन में आपने मुस्लिम स्त्री की कठमुल्लावाद द्वारा की जाने वाली दुर्दशा को पूरी बेबाकी से नंगा किया है। क्या आपको धार्मिक उग्रवाद से डर नहीं लगता?

उत्तर– आप 'ख़ुदा की वापसी' को क्यों भूल गए ? उसकी सारी कहानियाँ शरीयत-लॉ पर आधारित हैं। मुझे लगता है कअ ापअ गरअ पनाए तराज़ब ड़ीग म्भीरताके स ाथत र्क और तथ्य की सच्चाई पर उठाएँ तो विपक्ष भी सोचने पर मजबूर हो जाता है कि जो कह रहा है उसकी नियत में खोट नहीं है। रही डर की बात तो बचपन से डर नाम की चीज़ मेरी ज़िन्दगी में नहीं रही जो बात मुझे बेचैन करती है उसमें मैने कभी

कूटनीति का घालमेल नहीं किया कि इस से मुझे क्या नुक़सान या फायदा होने वाला है!

प्रश्न:त स्लीमाक ी' लज्जा'म ुझेअ च्छील गीथ ी ाउ सके लेखभ ीब ड़ेज ानदारह ैंअ ौरकु छट ुकड़ेअ ात्मकथाके ज हाँ उसने अपने घर, बहनों और माँ–बाप का जिक्र किया है बहुत प्यारे हैं। वह अपने को लेखक नहीं कहती है मगर अपने जज़्बात और विद्रोह को वह ज़रूर कहानी कविता के फार्म में व्यक्त करती है। उसने कभी सर नहीं झुकाया न माफी माँगी। इस बात की मेरे दिल में बड़ी क़दर रही है मगर आखिर में जो उसने अपने उपन्यास के कुछ अंश हटाने का समझौता किया वह एक खतरनाक शुरूआत हुई है जिस ने तस्लीमा की मजबूरी से ज़्यादा हमारी परेशानी भविष्य में बढ़ाई है। ईरान में एक बहुत बड़ी परम्परा रही है कि लेखक ने अपने लिखे की क़ीमत जान देकर चुकाई है।

प्रश्न: पहले साम्प्रदायिक दंगे होने पर हिन्दी–उर्दू के लेखक कन्धे से कन्धा मिला कर सड़कों पर उतर आते थे। शान्ति मार्च करते थे। अब वे ऐसा क्यों नहीं करते ? इस शुतरमुर्ग़ प्रवृति के क्या कारण हैं ? क्या लेखक का काम सिर्फ लिखना भर ही है ?

उत्तर– है तो उसका काम लिखना ही है मगर सरगर्मी भी ज़रूरी है। अब वह टी.वी. पर आकर बोलते हैं। शांति मार्च भी अपना प्रभाव कहाँ छोड़ पा रही है ? एक निराशा सी है सदमें की कैफियत है फिर लेखकों की उम्र का भी तकाज़ा है। मीडिया को खुद उनके घरों तक जाना चाहिए।

प्रश्न: हिन्दी–उर्दू भाषा के बीच का रिश्ता क्यों सौतन में बदल गया है ?

उत्तर– मुझे ऐसा महसूस नहीं हुआ क्योंकि हिन्दी में उर्दू कहानी और उर्दू में हिन्दी कहानी का स्वागत बराबर होता है। कुछ लोग बोलते हैं तो वह ही हमारा इकहरा सच थोड़ी है।

प्रश्न: अल्पसंख्यकों के प्रति हिन्दी साहित्य इतना अनुदार क्यों है ? पुरस्कारों की रेवड़ियाँ जब बटती हैं तो हिन्दी के अलपसंख्यकल ेखकोंक ोक योंन ज़रअन्दाज़ ाकयाज ाताह ै? ज़्यादातर पुरस्कार सवर्णों की झोली में ही क्यों गिरते हैं ?

उत्तर– कई वर्षों से साहित्य अकादमी और ज्ञानपीठ पुरस्कारों को लेकर यह प्रश्न बार बार उठाया जा रहा है। अन्य भाषाओं जैसे उर्दू, कश्मीरी आदि के मुसलमान लिखने वालों को यह इनाम बिना किसी भेदभाव के दिया जाता रहा है। (दूर सेए ेसाह ील गताह ैअ न्दरक ीब ातक ास चव ेभ ाषाएंज ाने जिनके लिखने वाले स्वयं भाषा का चयन करते हैं।) मगर हिन्दी में ऐसा नहीं है। यह इत्तफाक भी हो सकता है तभी राही मासूमर ज़ा,ग ुलशेरम ोहम्मदश ानीक ोन हीं िमला ािजसत रह कृष्ण बलदेव वैद और देवेन्दर इस्सर को नहीं मिला। आधा गांव, काला जल, उसका बचपन, खुशबू बन कर लौटेंगे ऐसी कृतियाँ जो हिन्दी साहित्य की उपलब्धियां है। अगर यह इत्तफाक नहीं है तो फिर यह पसन्द नापसंद का मसला है। यहाँ बात बहुसंख्यक या अल्पसंख्यक या हिन्दू–मुसलमान से ज़्यादा सियासत की है, अच्छे और बुरे क़लम की है। साहित्यिक सियासत का पता सब को है। हर पुरस्कार के पीछे का सच भी सामने आ जाता है फिर इन बातों में उलझना नहीं चाहिए। ये सवालल ेखकके न हींह ैं ाउ सकाक ामस ृजनक रनाह ै ाम ुझे अरून्धती राय का कथन याद आता है कि सब पुरस्कार का नाम लेते हैं मेरे उपन्यास का नहीं। यही वह साजिश है जब कलम और लिखी या लिखाई गई रचना बाज़ार ख़रीद लेता है और अपनी मर्ज़ी से चर्चा कराता है। पुस्तक सहज रूप से पाठकों को स्वीकार हो, वह अपनी जगह खुद बनाएं इस से पहले ही पाठक दो या चार फाँक हो जाते हैं। पुरस्कार किसी लेखक के अच्छे लेखक होने की गारण्टी नहीं है। न पुरस्कार किसीक ृतिक ोस म्मानि दलाप ाताह ैज बत कउ सर चनाम ें ख़ुद जान न हो। मेरा जवाब कुछ लम्बा हो गया है मगर इसको खोलना भी ज़रूरी है और ख़ुल कर कहना भी। कला की चौखट पर न कोई दलित होता है न सवर्ण। इस तरह का बटवारा और आरक्षण मुझे क़तई पसन्द नहीं है उसी तरह जैसे पूरी ज़िन्दगी हिन्दी पढ़ा कर, हिन्दी में साहित्य रचना कर कोई अध्यापक – लेखक हिन्दी का पुरस्कार ले। अन्त में आपकी इजाज़त लेकर मैं अपने पढ़ने वालों से कहूँगी कि चन्द लोगों की संकीर्ण सोच न हिन्दी साहित्य की सोच है और न ही हिन्दी लेखकों की कुंठा, जिनकी है और जो यह पक्षपात करते हैं, उनका चेहरा भी जाना पहचाना है और अन्त में सब की पोटली खुल जाती है। बाकी बचती है बढ़िया रचना, जो सदियों के बाद भी ज़िन्दा रहती है क्यों न हम इस मुद्दे पर बात करें।

प्रश्न: इधर कहानी विधा में तेजी से हो रहे परिवर्तनों को आपि कसद ृष्टिस ेद ेखतीह ैं? इ नप रिवर्तनोंस ेक याक हानी आम पाठक के क़रीब आई है या और दूर हुई है ?

उत्तर– साहित्य से दूरी अन्य कई कारणों से समय के बदलतेप रिदृश्योंके क ारणभ ीह ुईह ै ाउ सम ेंअ केलाक ारण

लेखक का प्रयोग-धर्मी होना भर नहीं है। आज से बीस वर्ष पहले तक एक मानक था। ऐसी साहित्यिक पत्रिका थी जहाँ छपनाय ानील`खकब ननेक ाश ुारूआतज`ैसाथ ा।अ ापअ पनी ज़िन्दगी के साथ जितने भी खिलन्दड़े हो, रिश्तों की खूंटी को उखाड़ते हर परम्परा को तोड़ मस्त रहने वाले हों मगर जब आप क़लम और काग़ज को लेकर बैठते थे तब आप निष्ठावान होते थे। इसी लिए पाठक भी उन रचनाओं को आदर से पढ़ते थे। लेखक खुद एक दूसरे के गुणों को स्वीकार कर उन रचनाओं को आदर देते थे मगर अब इस विरासत के खिलाफ बिल्कुल गैरसंजीदा अन्दाज कुछ लोगों ने अपना लिया है। ढेरों मैगजीन है, ढेरों लेखक हैं। लेखक बनना, लेखक को जीना खुद लेखक के लिए एक बेहद दर्द से भरी पगडंडी होती है मगर कुछ ने चौड़ी सड़क पर दौड़ने की क़सम खा रखी है। यह कुछ हमेशा चर्चा में आकर ज़रूरी कहानियों का समय व सम्भावना चुरा लेते हैं और हम उन पर फोकस नहीं कर पाते हैं। आपके सवाल का जवाब मैं एक वाक्य में दे सकती थी कि प्रयोग जो भी कहानी के साथ किया जा रहा हो अगर उसमें इन्सान की सम्वेदना न हो, समय की धड़कन और जूझते प्रश्न न हों तो फिर परम्परागत अन्दाज़ में लिखी कहानी भी किस को याद रहेगी और आज का पाठक उसे क्यों पढ़ेगा जब कि रोज़मर्रा की उसकी ज़िन्दगी इन कहानियों से आगे के अनुभव और अनुभूतियाँ दे रही हो।

प्रश्न: क्या नई कथा पीढ़ी के आ जाने से पुरानी कथा पीढ़ी अप्रांसागिक हो जाती है ? क्या पुरानी पीढ़ी की दृष्टि और सोच में मोतियाबिन्द उतर आता है ? क्या प्रेमचन्द, जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय, निर्मल वर्मा, कृष्णा सोबती अब अप्रासांगिक हो गए हैं ?

उत्तर–ि जनल ागेांन`ह मारेा लएर ास्तास ार्फा कयाउ न्हें ही हम रास्ते का पत्थर समझने की जुर्रत कर बैठे ? एक लेखक और उस जवान मर्द का फर्क ही मिट गया जो बिल्डरों की दी गई लालच से बड़े हाते के बंगलों से अपने मां-बाप को निकालने में जरा भी नहीं झिझकते और उनकी हत्या में सांझेदारीक ाश ाकभ ाछ ाड़ेद`तेह`ैं ास ाहित्यअ ौरस ाहित्यकार अपने समय से जूझता है और भविष्य को नज़र में रख कर रचनाक ास ृजनक रताह`ै ाउ सकाक ामअ ानेव ालीप ाढ़ीक ा बेहतर सोच और बेहतरीन रिश्ते को पाने-बनाने की जुस्तजू का जज़्बा देना है न कि उनकी दैनिक कष्टों और बदलते जीवन सन्दर्भ गुत्थियों के हल! समय का लेखक अपने समय से कैसे पंजे लड़ाता है यह महत्वपूर्णा है। यदि ऐसा न हो तो फिर हम अपनी विरासत की बात ही क्यों करें ? हर लेखक की कुछ रचनाएं जो परिस्थितियों से प्रभावित हो कर लिखी जाती हैं अकसर स्थितियों के बदलने से हमको उस दौर की सूचना तो देती हैं वह अप्रासांगिक कैसे हो जाती हैं। यह वही बात लगती है कि हम बिना किसी तर्क के ग़ैरजरूरी तौर पर उन चीज़ों को रद करने में लग जाते हैं जो अपने दौर में लिखी गई थीं। आज भी मैं इन सवालों को समझ नहीं पाती हूँ। अपने में गैरज़रूरी ही नहीं बल्कि अफ़सोसनाक हैं। इन सभी लेखकों ने जो ज़िन्दगी के शेडस हमें उत्कृष्ट कहानियों द्वारा दिये हैं उन में ऐसा कौन सा मुद्दा है जो अप्रासांगिक हो और उन्हें मोतियाबिन्द हो जाने का आरोप दिया जाए ? प्रेमचन्द का वही किसानअ ाजअ ात्महत्याक रर हाह`ैम गर्रा जनकीप कड़ग ांव के परिवेश पर आज बताई जा रही है वे लेखक क्या कर रहे हैं ? जैनेन्द्र जी की सुनीता आज कितने रंगों में हमको मुखौटा बदल-बदल नज़र आ रही है ? निर्मल वर्मा की प्रवासी भारतीयों पर लिखी कहानियों का अगला पड़ाव तो ख़ुद आज हिन्दी कहानी के रूप में विदेशों में बैठे लेखक अपनी बात काग़ज पर उतार रहे हैं (अज्ञेय जी को मैंने ज्यादा पढ़ा नहीं) कृष्णा सोबती जिस तरह अपने उपन्यासों व लेखों के अतिरिक्त महत्वपूर्ण मुद्दों पर एक लेखिका की तरह रिएक्ट करती है वह उनकेप्ासंगिकह ानेक ाप्माणह`ै ाय दिउ नकाा ज़न्दगीन ामा और सिक्का बदल गया आपको अप्रासंगिक लगता है तो बटवारे के सच को कहाँ रखेंगे जब हमारा देश बटा और पाकिस्तान वजूद में आया जो हर तरह से हमारी सुरक्षा और शांति के लिए चुनौती बना हुआ है ? आज यह बात प्रेस्टीज ईशू बनती जा रही है कि इण्टरनेट पर कौन लेखक है। उसके कितने पन्ने है मगर इसका यह मतलब नहीं कि जो वहां नहीं वह अप्रासंगिक हो गया है। यह सारी फुज़ूल बदकही है। हम बहुत पुरानी परम्परा से जुड़े लोग हैं। जब क़लम, काग़ज नहीं था तब कील से पत्थर पर लिखते थे, खरिया की शिला पर लिखते थे, सिरकंडे और परिन्दे के पर से निब की तरह लिखते थे। जब नहीं लिखते-पढ़ते थे तो किस्से कहानी कर किस्सागोई की परम्परा बना लोक-साहित्य रचते थे। बेबिलान के दौर में मिली वह लम्बी कविता 'गुलगामिश' हमारी विरासत है या अप्रासंगिक रचना, उस रचना को पढ़ें और समझें तो आपको उस में बहुत कुछ वर्तमान की अनुभूतियां महसूस होंगी।

प्रश्न: वैश्विक मंदी ने पूंजीवादी व्यवस्था की कलई खोल दी है। यह व्यवस्था दलाल व्यवस्था है। शोषणवादी व्यवस्था है जो मेहनतकश को इन्सान की तरह जीने नही देती है। उसे पशुवत जीवन जीने को विवश करती है। क्या अपने देश में यह व्यवस्था अब बदलेगी ?

उत्तर– सामंती हो या पूंजीवादी इन दोनों के अलावा यदि कोई व्यवस्था हो तो उस में भी मेहनतकश तब्के को राहत कतई नहीं है। राहत सिर्फ वहाँ है जहाँ व्यक्तिगत रूप से किसी विशेष का इस तबके के प्रति दयालु नज़रिया और हमदर्दी भरा व्यवहार होता है वरना समूह में शोषण का होना लाज़मी है क्योंकि हर मालिक का ज़ोर ज़्यादा से ज़्यादा उत्पादन पर होता है वह मज़दूर तो दूर क्वालिटी तक का ध्यान नहीं रख पाता मगर जहाँ भी मजदूरों के लिए बेहतर कानून, रहने की और बच्चों की शिक्षा की अच्छी व्यवस्था और पगार ठीक ठाक रहती है वहां पर मामला ठीक ही चलता है। हमारे देश में मज़दूरी बढ़ी है मगर स्टैण्डर्ड ऑफ लिविंग उनका नहीं बढ़ा है क्योंकि वह आधी से ज़्यादा कमाई शराब पर या फिर दूसरी औरत से विवाह कर एक वक़्त के बाद ख़ुद औरत पर बोझ बन जाता है। यह इतनी बड़ी समस्या है जो मेहनतकश औरतों के लिए किसी अभिशाप से कम नहीं है। इस को बड़ी गम्भीरता से लिया जाना चाहिए।

प्रश्न: आपका लेखन किस विचारधारा से प्रभावित है ? किस विचारधारा का समर्थक है ?

उत्तर– मेरे साथ बड़ी ट्रेजडी यह हुई कि मैं किसी भी विचारधारा को समझने, पढ़ने और समर्थक बनने से पहले लेखक बन गई। लेखक के नज़रिए से मैने धर्म और विचारधाराओं को समझने की कोशिश ज़रूरत के अनुसार जरूर की है। मगर इन से प्रभावित होकर लेखन कभी नहीं किया है।

प्रश्न: बाज़ारवाद ने जिस तरह से मानव मूल्यों और नैतिकताओं को तहस-नहस किया है, जिस तरह से इन्सान का मशीनीकरण किया है आदमी और जानवर के बीच के फर्क को समाप्तक र ि दयाह ै,य ह ि सलसिलाक याक भीथ मेगान हीं? क्या आदमी आदमी को फाड़ खायेगा ? क्या मानव सभ्यता फिर जंगल की तरफ लौट जायेगी ? क्या वास्तव में प्रलय एक सच साबित हो जायेगा ?

उत्तर– वैश्विक मंदी जिसका ज़िक्र आपने किया है। वह क़यामत बन कर गिरी है। प्रलय एक बार होगा। क़यामत दो तरह की बताई गई है। कयामते सुगरा (छोटी) कयामते क़ुबरा (बड़ी) ।अ ाजद ्बईस `8 0,0 00ल ेगन ौकरीके न र हनेस` घरों को लौट रहे हैं। जवान ख़ुदकुशी कर रहे हैं। बौखला कर अपने ही घरों में अपराध कर ख़सारा भरना चाहते हैं। बड़ी रकमों वाली नौकरी को छोड़ कर कम तनख्वाह वाली सरकारी नौकरी की तरफ लौट रहे हैं जिन्होंने नैतिकता को ताक पर रख कर पैसे कमाए थे अब उन्हें नैतिकता की अहमियत का अहसास हुआ होगा। 'कार्पोरेट' वर्ड किस तरह इन्सान को दबाव में लाकर उसे हर मूल्य से दूर करता है यह सब अब किसी से छुपा नहीं है तो भी जवान शोषित होने उसी तरफ भागतेह ैंक योंकिब ाज़ारन `अ ापकोम जबूर ि कयाह ैि कअ ाप ज्यादा से ज़्यादा कमाएं और आरामदेह ज़िन्दगी की दौड़ में शामिल हों। इन सारे नाटकों से इन्सान थक तो रहा है। भूखा होगा तो वह इन्सान को भी फाड़ खायेगा (और खा रहा है।)

प्रश्न: क्या ग़ुलामी ही हमारा जन्मजात संस्कार है ? या कि सात सौ वर्षो की गुलामी के कारण हम स्वतंत्रता की तमीज़ भूल चुके है ?

उत्तर– यह वाक्य कभी किसी लेखक ने लिखा होगा। हमको पसन्द आया और हम उसको दोहराने लगे। विदेशी सत्ता हमारेऊ परअ ंग्रेजोंक ेश ासनम ें अ ाईअ ौरव ापसग ई।म ुग़ल आए मगर यही रच बस कर मर खप गए। हम एक आंख से दोनों को नहीं देख सकते। दूसरे बादशाहत का दौर अच्छा बुरा भारतीयों ने अपने राजाओं द्वारा भी जिया है। हर भारतीय राजा प्रजा को गुलाम बना कर न रखता हो मगर प्रजा तो समझता था। वह कब गुज़र गया। उस दौर में जो अवसरवादी थे। जिन्हें न विदेशी हुकमरां का रहना बुरा लगता था न अपनों के लिए उन के मन में कोई दया भाव रहा, वह वर्ग आज हर कार्य क्षेत्र में मौजूद है। हम उनकी बात करें जो हम में से हैं और हमारी तरह न व्यवहार करते हैं न इस ज़मीन को अपनी सरज़मीन समझते हैं। देश का शोषण, भ्रष्टाचार, अत्याचार सभी तरह के खेल अपने देशवासियों के साथ करते हैं। वही लोग दिल्ली की एक सड़क का नाम औरंगजेब के नाम पर रखते हैं मगर दाराशिकोह और हज़रत महल को भूल जाते हैं आखिर क्यों ?

प्रश्न: हमारे देश का भविष्य क्या है ?

उत्तर–द ोस्त,द ोस्तन र हा,प यार–प्यारन र हा।य हए क सतह पर दिखता है। दूसरी सतह पर विकास, पुर्ननिमार्ण, पुल, इमारत, सड़कें और पन्ना पलटें तो मिल, कारखाने बन्द, किसान व जवान आत्महत्या कर रहे हैं और दो कमरों के

मक़ान की क़ीमत इतनी ज्यादा कि आम आदमी तनख़्वाह में जब गुंजाइश न देखे तो मजबूर हो जाये भ्रष्टाचार पर। मैं संक्षेप में बात ख़त्म कर दूँ यह कह कर कि आज हम इज्ज़तदार ईमान्दार जिन्दगी जो जी लेते हैं किसी तरह वह कल मुश्किल हो जायेगी। एक वर्ग यदि चाँद और मंगल पर चला भी जाता है तोउ सस`ेअ ामअ ादमीक ोक याफ र्कप ड़ताह`ैउ सेत ोर ोटी चाहिए.... गर्म, फूली, काले भूरे चकत्तों वाली।

प्रश्न: जार्ज बुश को जूता फेंककर मारने का दुस्साहसिक कार्य एक इराकी पत्रकार ने किया है। भारत में साम्प्रदायिकता फैलाने वाले नेताओं व धर्मगुरूओं को जूता फेंक कर मारने का काम क्या इस देश का कोई पत्रकार या लेखक कर सकता है ?

उत्तर– हमारे यहाँ अतीत में ज़रूर यह काम हुआ था। जिसको सोच कर आज भी हमारी गर्दन झुकती है शर्म और अफसोसस`े ाग ांधीज ीके ब ादइ न्दिराग ांधीप रग ोलियोंक ी बौछार हुई मगर हम अपने को अहिंसावादी कहते हैं इस लिए उस. कदमक ोि नन्दाक ोग ईम गरउ सकेब ादक ाफ सादभ ी आज कोई भूल नहीं पाया। यहाँ पर एक बात कहना चाहूँगी किह मभ ारतीयक ु छअ लगब नावटके ल ोगह`ैं ।अ नेकताम`ें एकता की हमको चाहे अनचाहे आदत–सी पड़ गई है। हम को बाँटना आसान भी है और बहुत मुश्किल भी हम जूता मारना, जूता सुंघाना, और जूतियों में दाल बांटना भी जानते हैं। हमारी हज़ार पर्तें हैं मगर .....मगर जब कोई घटना घटती है और उसे न्याय के स्तर पर पक्ष और विपक्ष की फांकों में बांटा जाता है या झूठ और सच को पछोड़ना शुरू किया जाता है। उस समय जाने कहाँ से तीसरा मोर्चा कमर कस खड़ा हो जाता है जो लीपाप ोतीक रना,त थ्योंक ोउ लझाना,झ ूठस चक ोि मलाना, कुछ ऐसा समां बाँधता है कि मामला गैरज़रूरी बहसों में उलझ जाता है। यह तीसरा (दलाल) मोंचा इतना ज़्यादा पावरफुल हो चुका है कि वह सकारात्मक शक्तियों को चाहे वह किसी कार्यक्षेत्र की हों उन्हें दबाने, चकराने, ठंडा करने, में ज़बरदस्त कामयाबी हासिल कर रहा है मेरी चिन्ता का विषय ऐसे लोग हैं जो हमारे साथ हमारे बीच रहते हुऐ हमारी हर कोशिश, हमारे हर जूते का निशाना खता करवा देते हैं। ◆

❑

■ **कहानी** - जया जादवानी

तुम उसी दुनिया में रहते हो जो तुमने बनायी है।

उनके बच्चों के पुराने स्कूल बैग्स, पुराने जूते, पुराने मोजे, पुरानी ड्रेसेस सिल सिलाकर ही हमारा नसीब बनतीं। उनके नये जूतों, मोजों, ड्रेसेस, स्कूल बैग्स को हम ललचाती नज़रों से देखते। एक ही स्कूल वे रिक्शे से जाते, हम पैदल .....। घंटे भर पहले निकलना होता। धूप से बचने के लिए हम बस्ते अपने सिर पर रख लेते। भइया को मुझ पर तरस आता, कहता ...तू थोड़ी देर सुस्ता ले।

31 दिसंबर 1995

आज इस जाते हुए साल की आखिरी रात और मैं अकेली अपने साथ। जानती हूं सिर्फ मां के सीने में थोड़ी कसमसाहट होगी बाकी सब तो यही चाहते हैं, मेरा मुंह न देखना पड़े। यही सोच कर मैं उनके साथ टी.वी. देखने हाल में नहीं बैठती। एक साल के खत्म होने और दूसरे के शुरू होने के बीच का वक्त है ये और मैं अकेलीह ूं. ..ा किसीक ा ्यारम ेरन सीब में नहीं। एक मम्मी है वो भी कुछ प्रकट नहीं कर पातीं हर समय डरी सहमी रहती है। उन्हें भी मुझसे अब ज्यादा लगाव नहीं रह गया। दिनों वह मुझसे इतनी दूर-दूर रहती है मानों मैं उनका कोई भयानक ख्वाब हूं। ख्वाब नहीं हकीकत। सिर्फ हकीकतें भयानक होती हैं .....ख्वाब तो .....इतने नर्म, नाजुक, सफेद पंखों वाले होते हैं कि छूते ही मुरझा जाये तभी तो मैं नहीं छूती.......। और मां का भी क्या दोष ? वे भी तो इस मांस के लोथड़े के प्यार करने का नाटक करते-करते ऊब चुकी होगी। वे भी तो कठपुतली है पिता जी के हाथ की। वे कहेंगे सारी रात ठंड में बाहर खड़ी रहो, वे नहीं पूछेंगी क्यूं ? वे जिसे अच्छा कहेंगे, ये भी अच्छा कहेगी, जिसे बुरा कहेंगे, ये भी। तुम खुद क्या हो- मिट्टी का तोंदा या दूसरी तरफ भाभी है, दिन भर भईया के नाक में दम किये रहती है उनका मूड अच्छा हुआ तो दिन भर चहकेगी तब भइया को भी हंसते देखा जा सकता है। जिस दिन उनका मूड खराब, भइया के भी बारह बजे रहेंगे। बात-बात में गाली देगे........ और है कौन गाली खाने को इस घर में .....मैं ही तो ? कितना ख्याल रखता था बचपन में मेरा। मैं तो कुछ भी नहीं भूली वह भले भूल गया हो। उसे यह सब भूलने के सारे अवसर नियति ने दिये, मुझे न भूलने के .....।

हमछ ठवींम ेंथ े. .....म ुझेइ सव क्त देखकर कौन कहेगा तब मैं कितनी दुबली-पतली थी। सिर्फ दुबली, सुंदर नहीं। मैंने अभी तक वे सारे फोटोग्राफ्स संभाल कर रखे हैं ......काली-कलूटी, खूब सारा तेल लगाकर बनायी गयी दो चोटियां, बाहर निकाल माथा, अंदर धंसी आंखें, बेडौल नाम .....हर समय किसी न किसी के प्यार को तरसती। भइया भी कोई खास सुंदर नहीं था, पर था तो लड़का .....लड़कों को प्यार भी उन्हें दूसरी सुविधाओं की तरह मिल जाता है फोकट से उसी समय पापा का ट्रांसफर हो गया कहीं और .....। पापा-मम्मी हम दोनों को ताई के पास छोड़कर चले गये। ताई के अपने तीन बच्चे, दो हम। सास-ससुर। वे दिन भर काम में जुटी रहतीं, हमें भी जुटाये रखतीं, सिर्फ अपने बच्चों को कुछ नहीं कहती। वे जोक रेंस बम ाफ ाह मब ात-बातप रम ार खाते-रोते। धूल भरे कपड़े लिये स्कूल से आने के बाद या तो घर का फालतू काम

कहानियों की दुनिया में चर्चित हस्ताक्षर। अपने पहले ही उपन्यास 'तत्वमसि' से चर्चा के शिखर पर । कई कहानी **संग्रह** - देश-विदेश की प्राय: सभी प्रमुख पत्रिकाओं में कहानियां प्रकाशित। **चर्चित कृतियां** - मैं शब्द हूं, मुझे ही होना है बार-बार। इस अंक में नई कहानी तुम अपनी बनाई दुनिया में रहते हो।

संपर्क-
Plot No. B/136, VIP Estate,
Vidhay Sabha Marg,
Khamardih, Raipur, (C.G.)
Mobile - 9827947480
[email
-jaya-jadwani@yahoo.com]

करते या आवारगी। उनके बच्चों के पुराने स्कूल बैग्स, पुराने जूते, पुराने मोजे, पुरानी ड्रेसेस सिल सिलाकर ही हमारा नसीब बनतीं। उनके नये जूतों, मोजों, ड्रेसेस, स्कूल बैग्स को हम ललचाती नज़रों से देखते। एक ही स्कूल वे रिक्शे से जाते, हम पैदल .....। घंटे भर पहले निकलना होता। धूप से बचने के लिए हम बस्ते अपने सिर पर रख लेते। भइया को मुझ पर तरस आता, कहता ...तू थोड़ीद`रस्ुस्ताल` ाह मद ानोंस ड़कके किनारे एक-दूसरे की बगल में बैठ जाते। वह बैठना मुझे अक्सर याद आता है। वापस आते थके हारे तो ताई देखते ही कहती.....गुड्डू तू जा, जरा आठ आने का हरा धनिया ले आ। भाई फिर पैदल भागता बाहर की ओर। मुझे छत पर भेज दिया जाता सूखे कपड़े उतारने, तहाकर रखने। हम भूख से बिलबिलाते इंतजार कर रहे होते कि पोहे बने तो हम खायें। पोहे बनते तो चाची आवाज लगाती .....सबसे पहले हम पहुंचते हमें देखते हीघ ृणास`उ नकेम ाथेप रा सलवटेंप ड़ जातीं.... भूखे कहीं के, सबसे पहले टपकतेह ो,द`खोत ानोंम`सं`क ोईअ ाया ? वे पहली तीन प्लेटें उनकी लगाती फिर हमारी। जितना हमारी प्लेट में डाला जाता, हम उतना ही खाते और मांगने की हिम्मत न होती। मांगना मतलब गालियां खाना। हम अपनी भूख से परेशान थे, जी करताख ातेज ाये।ख ातेज ाये।क याक ोई ऐसी चीज़ नहीं जो कितनी भी खाये, खत्म न हो। फिर वे आते लाड़-मनुहार करवाते, इन्हें क्यूं नहीं लगती इतनी तेज भूख ? हम एक साथ शाम को कंचे खेलते.... झगड़ते। वे तीनों मिलकर हम दोनों की ठुकाई करते..... फिर घर आकर ताई से चुगली। दो चार हाथ वे भी जमा देतीं। हम रोते-रोते ऊपर चले जाते। ऊपर छत पर गमलों में रखे छोटे-छोटे वे पत्थर जो हमने नदी से निकाले थे और उन्हेंभ गवानब ना दयाथ ाउ नकेस ामने बैठ कर रोते और सारी दास्तान कह डालते। उसने नहीं सुनी, उसने कभी नहीं सुनी, वह सचमुच पत्थर है .....।

एक बार दीपावली में पापा ने हम चारों बच्चों के लिये रूपये भेजे कि हमें नये कपड़े सिलवा कर दिये जाये। ताई ने सबसे पहले अपने बच्चों के लिए अच्छे टेरीकाट के कपड़े बनवाये, भइया के लिए एक रद्दी से कपड़े की शर्ट और मेरे ालयेए कल ालर ंगक ाट ॉपा सलवा दिया सूती कपड़े का बगल वाली सिन्धन आंटी से। कहा, नीचे का स्कर्ट अपनी बहन का पहन लेना छोटा करवा दूंगी। हम सिर्फ रोते रह गये। पटाखे और मिठाइयां आयी तो उनके बाद हमें मिली-जूठन। गर्मियों की छुट्टियों में पापा कहलवा भेजते नानी के घर आ जाओ, मां भी वही आ जायेंगी नानी के घर भेजते वक्त ताई हमारा खास ख्याल रखतीं...... कपड़े सिलवाकर देतीं, मीठी-मीठी बातें करतीं, मारना बिल्कुल बंद। रास्ते के लिये खूब सारी चीज़ें। हम भूल जाते कि साल भर हमारे साथ क्या हुआ था ? नानी के घर हम दिन भर बस खाते और खाते। नानी मां से कहती .....कुसुम तेरे बच्चे कितने भूखे हैं ? इनका पेट है कि कुँआ ? मां शर्मिन्दा होती। हम दोनों को ध्यान से देखती और पूछती ....तुम दोनों को वहां पेट भरके खाना मिल जाता है न ? हम हां में सिर हिलाते। वे अनिश्चित-सी चुपचाप हमें खाते हुए देखती। एक बार हम दो ही महीनों में आश्चर्यजनक रुप से मोटे हो गये। उसके बाद जो मोटे होने का सिलसिला चला तो भइया का तो रुक गया मेरा नहीं। छः साल इस नरक से गुजरने के बाद पापा का ट्रांसफर फिर यहीं हो गया। वे घर वापस आ गये। तब तक हमारा कितना नुकसान हुआ, यह सोचने जितना दर्द भी है किसी के पास ?

अरे, ये मैं कहां से कहां पहुंच गयी। भइया ठीक कहता है .....बिट्टू तू हमेशा पुरानी बाते क्यूं याद करती है ? जो गया सो गया। क्या सचमुच पुराना चला जाता है, या नये कपड़े पहनकर वापस आ जाता है .....हॉल में से शोर आ रहा है। लगता है, बारह बज गये। चलो, एक साल और कम हुआ उम्र का। शायद कोई बुलाने आये, कोई नहीं .....अब कोई नहीं आयेगा .....।

1 जनवरी 1996- रात

सुबह उठी तो रात का उत्सव किसी चेहरे पर नहीं था। न किसी ने विश किया न केक के लिये आग्रह किया। पड़ा है, खाना है खाओ नहीं तो मर्ज़ी तुम्हारी। मां को देखा उसी एकाग्रता से पति की सेवा में लगी है। रोज़ सुबह वही पानी, चाय, नहाने का गर्म पानी, साफ-सुथरा बाथरुम, तौलिया और नाश्ता। अंत में जूते पॉलिश। आज तो गनीमत है सुबह उठते ही कुछ शुरु नहीं हुआ, नहीं तो रोज वही किस्सा ..... 'कुछ किया क्या?' मां डरते-डरते पूछती ......।

'चुप रहो। मुझे कोई और काम नहीं है क्या ? हजार बार कहा ऐसी लड़की से कौन शादी करेगा, तेरी समझ में नहीं आता क्या मादर .....? हमारे गले का पत्थर है, हमारे ही गले में रहने दो। कौन दूसरा बांधेगा इस टुनटुन को अपने गले ? वही-वही बातें सुनाकर कान का पका देती हैं भेन.......।'

'पैदा क्यूं किया फिर ? जिम्मेदारी नहीं उठा सकते तो ?' मां चीख पड़ती है कभी-कभी।

'मुझे क्या पता था पत्थर का टुकड़ा पैदा हो रहा है ? गला नहीं दबा देता तभी ? मुझे इसकी शक्ल से नफरत है। दूर रखा करो इसे मेरी आंखों के सामने से .....।'

मैं कभी-कभी स्लीपिंग पिल्स गिनती हूं .....कितनी चाहिये एक बार मरने के लिये। मैं अस्पताल से वापस नहीं आना चाहती। अब रोना भी नहीं आता। भीतर एक खाली कुंआ है और गरम लावे-सी नफरत .....।

मां आकर मेरे सामने वाले पलंग पर पसर गयी है एक बूढ़ी लाचार ग़मज़दा थकी-हारी औरत, नाटा कद, सांवला रंग, मोटापा अस्थमा, हड्डियों के दर्द से पीड़ित .....। 'ये शादी है ? और मुझे कहते हो शादी कर लो और, जो ये दीवार पर टंगा है एक हंटर .....मुझे पता है कि काम आता है .....ठंडे शरीर को गरमाने ? औरतों को जब तक दो-चार हाथ, दो-चार गालियां न पड़ें, तब तक उन्हें लगता ही नहीं कि कोई उन्हें प्यार करता है। पिताजी चुप रहते हैं तो मां चिरौरियाँ करती हैं .....क्या बात है ? कुछ गलती हो गयी ? चुप क्यूं हो ? माफ़ कर दो।'

'चो .....प्प .....मादर .....। हर वक्त बकर-बकर .....' वे पूरी ताकत से चिल्लाते। कितना उलझा होता है रिश्तों कास मीकरण? ए कय`ह`ँ,ए कभ ाभी-भइया, एक चाची-चाचा। क्या स्त्री पुरुष के बीच कोई ऐसा रिश्ता नहीं बन सकता जो बराबरी का हो ? सहज हो ?

13 फरवरी, समय - रात

येम`राफ ायनलइ`यरह`ै ाइ नस बसे मुझे अच्छी तरह समझने के बाद भी कि कोई मुझसे शादी नहीं करेगा, मैं कोशिश करके अपने पैरों पर खड़ी हो जाऊं .....मेरे मन में हल्की-सी उम्मीद है कि एक दिन शादी करके मैं यहां से भागने में सफल हो जाऊंगी, अगर घर वाले कुछ ठीक-ठाक तरीके से ढूंढे.....। आया था एक बुजुर्ग साल भर पहले .....दिन भर साथ रहा पिता जी के, इतनी बातें .....इतनी बातें कि पूछो मत.....। उसने मुझे देखते ही पसंद कर लिया। जाते समय पिताजी से कह कर गया, मुझे लड़की पसंद है, आप आकर लड़का देख सकते हैं।

उसके जाते ही पिताजी ने इतराना शुरु किया .....।

'मैं इस घर से रिश्ता करुंगा ? साला समझताक याह`ैम ुझे? ज ाये,म ुंहध ोकर आये कहीं से ?'

वे लड़का देखने गये ही नहीं। मामला वहीं खत्म हो गया। मां की हिम्मत ही नहीं पड़ी कुछ कहने की।

हर वक्त सोचती रहती हूं क्या करूंगी ? पी. एच. डी. कर लूँ? इसके बाद ? नौकरी ? क्या ये काफी होगा ? कोई ऐसी जगह, घर या आदमी नहीं जहां पीठ टिकाकर खड़ी हो सकूं ? हॉय रब्बा। मेरी अपनी रीढ़ है भी कि नहीं ?

15 अप्रैल , समय—रात

टी. वी. सीरियल का एक दृश्य

लड़की - ये जन्म ही इतना खूबसूरत है कि मैं किसी दूसरे जन्म की कल्पना भी नहीं कर सकती। पहले इसे तो जी लूं तुम्हारे साथ .....।

लड़का - वादा करो, जब तक मैं तुम्हें जन्म जन्मांतर की खुशियां नहीं दे देता, तुम मुझे छोड़कर कहीं नहीं जाओगी।

वह वादा करती है। वह उल्लू की पट्ठी है। सारी उल्लू की पट्ठियां यही करती हैं। ठगे जाने पर यकीन करती हैं, मेरी बेवकूफ मां की तरह। अहोभाव से वह-वह लेती है, जो-जो वह देता है। चाहे उसके भीतर का कचरा क्यूं न हो ? जिसे वह किसी नाली में फेकने की बजाय तुम्हारे भीतर फेंकना बेहतर समझता है।

दिन भर यही तनाव क्या करे इस लड़की का ?

कॉलेज से वापस आने का मन नहीं करता। पढ़ाई हो न हो, रोज जाती हूं। अपने चारों तरफ फैले तमाम रास्तों को देखती हूं...... क्या इनमें से कोई मेरा नहीं है ?

30 मई 1996

एम.ए. खत्म कॉलेज खत्म। अब ? कहां भेजा जाये मुझे, घर में योजना बन रही है। मैं खुश हूं। ऐसी जगह जाना चाहती हूं जहां इन सब को न देखना पड़े जो मेरी हो और मुझे बुआ के पास भेजना तय हो गया ये लो, बंद करके रखी थी

यह किताब कि अब कोई नहीं देखेगा जीवनन`म ुझेख ुदख ोलनेके अ वसरद` दिये .....। अभि .....अभि .....मैं आ रही हूं...... मेरी मरुथल-सी तपती आत्मा ने पानी का स्वप्न देख लिया है ....एक दीवानगी है और कई रास्ते हैं .... और ये मेरे पैरों से बंधा सफर .....।

1 जून, समय- रात

बदहवास बैचेनी - जैसे कोई तेज हवा घर के सारे खुले दरवाजे और खिड़कियों को पीट रही है समूचे कांच टूट गये हैं .....किरचे बिखर गयी हैं .....खिड़कियों के कब्जे ढीले होकर लटक गये हैं .....हवा का जोर कम नहीं हो रहा। मन सूखे पत्ते-सा फड़फड़ाता हर जगह उड़ रहा है। कोई अपनी नोक से इसे भेद कर स्थिर कर दे।

मुझे यह हमेशा याद रहता है कि यह मेरा घर नहीं बीच का स्टेशन है। मुझे एक दिन बोरिया बिस्तर बांधकर यहां से चल देना है। मुसाफिर खाने में बहुत वक्त हो जाये तो आपकी छटपटाहट बढ़ती जाती है।

30 जून, समय-रात

क्या ये सारे धूप में तपते दिन, प्यास से बिधते दिन, जख्म से दुखते दिन सोकर नहीं गुजरे जा सकते ? क्या एक समय से दूसरे समय में छलांग नहीं लगायी जा सकती ? अभि .....कभी-कभी तुम इतने याद आते हो कि जी करता है खुद को टुकड़े-टुकड़े कर लूं .....।

5 अगस्त, समय- रात

आज मुझे अपनी दोस्त मनु की बहुत याद आ रही है। एम.ए. सायकॉलाजी हमने साथ किया। लिखती थी जाने क्या-क्या, हमें भी प्रेरित करती थी लिखने को .....' 'जोत ुमव ास्तवम`ंह ो,उ सेब ाहर आना ही है।'' एक बार कहा था उसने। 'कैसे ?' मैंने पूछा था।

'अपना अंड़ा खुद ही फोड़ना पड़ता है। बस कभी-कभी जब बहुत देर हो जाती है, अंदर से आहट नहीं आती तो ऊपर से कोई एक सयानी चिड़िया अपनी चोंच से खटखटा देती है कि Your Time has come. Now come out ये अंदर वाले पर निर्भर करता है कि उसने सुना या नहीं और उसकी तैयारी कितनी है ?' समझ में नहीं आया क्या कह रही है ? पर अच्छा लगा। कोई ज़रा-सी भी दिलचस्पी मुझमें लेता है तो मुझे अच्छा लगता है। मैं उसे लगभग प्रत्येक बात बताती थी। 'एक दिन मैं नहीं रहूंगी तो तुम डायरी लिखना .....अंदर की सफाई ज़रुरी है।' आखिरी दिन उसने कहा था .....।

कुछ रोशनियां कुछ खास रोशनियां जो किसी दूरस्थ सरहद पर निमिष भर के लियेच मकतीह`ैं. ....ल`किनप ूरेज ीवन का रास्ता और दिशा तय कर देती हैं, वे अंधकार में ही दिखती हैं।'

> **आपना अंड़ा खुद ही फोड़ना पड़ता है। बस कभी-कभी जब बहुत देर हो जाती है, अंदर से आहट नहीं आती तो ऊपर से कोई एक सयानी चिड़िया अपनी चोंच से खटखटा देती है कि Your Time has come. Now come out ये अंदर वाले पर निर्भर करता है कि उसने सुना या नहीं और उसकी तैयारी कितनी है ?**

10 अगस्त, 1996

जबलपुर- समय-रात

अभी कुछ ही दिन हुए हैं यहां आये ..... नया घर, नया माहौल, नया अहसास। बुआ अच्छी हैं, उनकी तीनों बेटियों की शादी हो गयी है। मेरे आने से खुशह`ैं ाफ ूफाजीन`म ुझेद`खतेह ीक हा ....अहा! अब आयी है बहार सूने घर में।'म`ैंस ंकुचाग यी।' बहार'ज`ैसाश ाब्द मैंने खुद से जोड़ कर देखा ही नहीं। मेरे लिये तो करमजली, मुंहजली, अभागी, मोटी, गले का पत्थर जैसे शब्द ही ठीक हैं। बाद में आया मुझे उस शब्द का मतलब समझ में .....।'

उनकेक मरेक ीए कद ीवारप रब ने सेल्फ में नीचे से ऊपर तक ओशो ही ओशो .....। जिसे वे बड़े गर्व से हर आने जाने वाले को दिखाते हैं, पता नहीं पढ़ते कब हैं। इनकी किताबें हमारी कॉलेज की लाइब्रेरी में भी हैं, पर मैंने नहीं पढ़ीं। उन्होंने निकाल कर दी एक किताब संभोग से समाधि तक .....। देते-देते मेरा हाथ मरोड़ते गये। कई दिन की मशक्कत के बाद भी किताब मुझे समझ में ज़रा कम आयी। मैंने जब यही बात उनसे कही तो उन्होंने हंसकर मुझे अपने बाजुओं में भींचा .....।

इसे समझने के लिए तुझे मेरे पास आना पड़ेगा।

मैंने उन्हें परे फेंक दिया .....।

'बुआ को बुलाती हूं। दोनों को एक साथ समझाना जल्दी समाधि मिल जायेगी।' मैं नफरत और गुस्से से कहती हुई बाहर भाग गई।

अगले दिन मैंने बुआ को समझाया कि मैं यहां नहीं रहूंगी छोटी बुआ के पास जाऊंगी। यहां मेरे बराबर का कोई है नहीं और मैं बोर होती हूं। थोड़ी ना नुकुर के बाद वे मान गयी। चल बेटा सामान उठा। उससे अगले दिन जब फूफाजी घर पर नहीं थे, मैंने वह घर छोड़ दिया।

14 अगस्त, समय—रात

यहां आई तो लगा यही आना चाहती थी। कोई कैसे दूर कर सकता है अभि को मुझसे ? मैं खुद तक नहीं। वह और मैं बचपन के साथी ..... हर गर्मियों में वह सारी दुनिया को छोड़ सिर्फ हमारे घर आता। वे दो महीने हम साथ खेलते साथ

खाते, साथ झगड़ते ..... गिर गया कब भाई-बहिन का रिश्ता ..... पता ही नहीं चला .....।

'ऐ, तू मेरा भाई है, दूर रह कर बात कर मुझसे।'

'दूसरों के सामने भाई हूं। हम जब बड़े हो जायेगें शादी कर लेगें।'

'पापा तेरा गला काटेगें, बुआ मारेगी।'

'हम दोनों घर से भाग जायेगें।'

'हिम्मत है ?'

'कह कर देखना।'

'अभि, मैं चाहती हूं, कोई मुझे भगाकर ले जाये, यहां मुझे अच्छा नहीं लगता।'

वह बचपन था। बुआयें आती, हम खूब सारे बच्चे एक ही कमरे में सोते ..... कुछ पलंग पर, कुछ ज़मीन पर ..... वह न जाने कब खिसक खिसक कर मेरे समीप आ जाता। सब सो रहे होते, वह अपनी बाहों में भरकर मुझे चूम रहा होता .....। मैं दूर सरकती, वह भी सरकता, सरकती हुई दरवाज़े के बाहर हो जाती फिर किसी के देख लिये जाने के डर से अंदर दुबकती तो उसकी बाहों में पनाह मिलती। यह पाप है, यह मेरी बुआ का लड़काहै,म`राभ ाई ाि दनम`ेंह ज़ारब ार समझाती खुद को। मेरा तिनके-सा निर्णय उसकी आंधी में न जाने कहां खो जाता।

कोई मुझे चाहता है, प्रेम करता है, किसी को मेरी ज़रुरत है। यह एक ऐसा अहसास था जिसे में जितना दबाती उतना ही वह सिर उठाये घूमता। उन दिनों मैं खुद पर ध्यान देती अपने कपड़ों चेहरे, मोटापे, अपने व्यवहार पर .....।

बुआयें चली जातीं, घर सूना हो जाता। अब टॉवेल लेने के बहाने बाथरूम में खींचकर चूम लेने वाला कोई न था। अब यह न लगता कि हर वक्त कोई आसपास घूम रहा है। देख रहा है। स्कूल खुल जाते। मैं खुद से वादा करती कि इस बरस उसे भूला दूंगी। बरस गुजर जाता उसके आने के साथ ही वादा भी टूट जाता।

एक नंगी बेलौस, ऊबी, थकी, हारी दुनिया से भागकर मैं उस दूसरी दुनिया में जा खड़ी होती, जहां शब्दों का जादू था, जो उजाले के टुकड़ों की मानिंद धीरे-धीरे मुझ पर बरसता। मुझे लगता मेरी देह लगभग जगमग करने लगी है। वह दुनिया मुझेअ भिभूतअ ौरप वित्रक रती,ि फरमैं वापस लौटती अपनी पुरानी चिथड़ी दुनिया में .....। इसकी गिरफ्त से फिर एक बार भागने का स्वप्न लेकर। तब जीना ज़रा आसान हो जाता।

आज वह है नहीं यहां। बुआ ने बताया कल वापस आयेगा। उसकी खड़ूस बीवी मुझ पर नज़र रखे हुए है। तनी हुई है वह मेरे यहां आ जाने पर। ऊं तनी रहे। क्या कर लेगी ? क्या कर लिया है अब तक ? वो तो कहो, मैंने मनाकर दिया शादी से मानता ही कहां था .....।

क्यूं, मुस्लिमों में तो हो जाती हैं, हम में क्यूं नहीं ? क्या भावनायें भी हिन्दू मुस्लिम होती हैं ? और सुन .....शादी किसी से भी हो, रहूंगा मैं तेरा ही .....।

16 अगस्त, समय —रात

'अरे, तू आ गयी। मैं जानता था उस घर में तू ज्यादा दिन नहीं रह सकती। वापस आना पड़ेगा इसी घर में। मैंने तुझे जानबूझकर फोन नहीं किया। मैं देखना चाहता था तू कब आती है?'

मैं एकदम से कुछ कह नहीं पाई। मेरे भीतर कुछ लम्हें थरथर कांप रहे थे। मुझे डर था मैं रो न पड़ूँ। मैं बरामदे की धूप में खड़ी सुबह की चाय पी रही थी......। कुछ दिनों की बदली के बाद आज मौसम खुला था। मैं अपने भीतर जाने क्या ढूंढ रही थी, जब वह अपने बैडरुम से बाहर निकला..... अलसाया-सा......र ातके क पड़ोंमें ....ि बखरे-बिखरे बाल...... सल पड़ी टी शर्ट..... दो दिन की दाढ़ी .....। मैं उसे ठीक से देख भी नहीं पायी क्या पता उसकी बीवी कहां से हम पर नज़र रखे हुए हो।

'ऐ तू चुप क्यूं है ?' 'उसने मुझे डांटा उसी अधिकार से ..... मैं कनखियों से किचन की ओर देखती मुस्करा दी वह समझ गया..... लापरवाही से कंधे उचका दिये।

'कैसी है ?' निरर्थक प्रश्न

'ठीक हूं।' निरर्थक जवाब

'पी.एच.डी. करने के वाद डॉ. बन जायेगी अच्छा। फिर तो तेरे से डरना पड़ेगा। हमारे घर में तो कोई है नहीं इतना पढ़ा लिखा......।'

'इसीलिये तो पढ़ रही हूं, कमअज़कम तू डर के रहना।' मैं हंस दी, पुराने दिन लौट आये हों जैसे। मुझे डराने के लिये इतनी मेहनत मत कर। 'मैं तो शुरु से डरता हूं तुझसे। जो कहती है वही करता हूं। अब सुन आ गयी है न..... अब जाने की बात की तो पकड़ के पीट दूंगा.....।'

हम दोनों हंसने लगे। उसकी बीवी बाहर आ गयी किचन से अपनी और उसकी चाय लेकर। मेरी हंसी को ब्रेक लग गया......।

'मैं तो दीदी को कह रही थी अच्छा हुआ आप आ गये। अब यहीं रहना अलग से कमरा ढूंढने की कोई ज़रुरत नहीं है। अगले हफ्ते राखी है, नंद घर आयी है सावन के महीने में।'

हम दोनों एक दूसरे को देखते रह गये। मैंने चाय खत्म की और पढ़ने के बहाने भीतर चली गयी।

21 अगस्त, राखी का दिन

बुआ के मन में उत्साह और खुशी है कि मैं राखी के दिन उनके घर पर हूं। वे इतनी बूढ़ी और बीमार हैं कि सिर्फ पूजा

करती रहती है। मेरे आने पर उन्हें भी लगा होगा, कोई सुनने वाला आ गया। अब रोज़ पड़ोस में नहीं जाना पड़ेगा। उन्हीं के कमरे को मैंने अपना कमरा बना लिया है। अकेली औरतों का कुछ भी अलगन हींह ोता ाउ नकीक ोईब ेटीन हीं है, बस एक ही बेटा .....। राखी के दिन आस-पड़ोस की कुछ लड़कियां आती हैं राखी बांधने। सारे जतन लड़कियों को बचाने के लिये किये जाते है फिर भी वे नहीं बच पातीं।

हम नहा-धोकर हाल में इकट्ठे हो गये। मेरे सामने राखी की थाली सजी है- रेशमी धागा उसमें पड़ा है। उसकी बीवी को बहुत जल्दी है मुझसे राखी बंधवाने की। अभी पड़ोस से कोई आया नहीं है।

अरे भई, मै ये मिठाई नहीं खाउंगा। फ्रिज में मैने कल रसमलाई लाकर रखी थी, वह ला दे। 'उसने अपनी बीवी से कहा।

उसकी बीबी उठी और किचन में चली गयी।

उसने अपनी मां से बचाकर मुझे आंख मारी और इशारे से कहा बांध दे, कुछ नहीं होता इन धागों से ।

रसमलाई आ गयी। उसने बड़े प्रेम से खायी खिलायी और राखी बंधवायी।

त्यौहारों का सबसे बड़ा आनंद है नये कपड़े और मिठाइयां नहीं तो साला वही दाल चावल.......।'

सब कुछ खत्म हो गया। शाम के धुंधलके में मैं बाजार से वापस हो घर में घुसर हीथ ी,व हा नकलर हाथ ा ाउ सने अपनी जेब से छोटी सी कैंची निकाली धागाक ाटाअ ौरम ेरेह ाथम ेंथ मा दया। क्षणांश में वह गेट के बाहर था और अपनी मोटर सायकिल पर यह जा ..... वह जा .....।

2 अक्टूबर 1996 समय—रात

असहनीय है, फिर भी सहनीय बनाना पड़ता है। उसकी बीवी मुझे एक आंख नहीं चाहती पर बुआ ने मुझे समझा दिया है। मैं उसकी तरफ देखूं ही नहीं। वह तो चाहती है सिर्फ उसका मियां रहे और वह ...। तो क्या हम सब मर जाएं ? मैं तो और बहुत साल इसकी छाती पर मूंग दलूंगी। सुनकर मुझे हंसी आ गयी। घर मैं हर वक्त किताबों के बीच रहती हूं या यूनिवर्सिटी की लाइब्रेरी में......। किचन में मेरा हाथ बंटाना उसे पसंद नहीं आता। सिर्फ कभी-कभी जब सुबह जल्दी उठ जाती हूं, किचन में जाती हूं चाय बनाने...... वहां रखे डब्बे मैले जान पड़ते हैं उन्हें साफ कर देती हूं वे फिर मैले हो जाते है। जीवन का क्या सचमुच कोई अर्थ है या हम यूं ही रास्तों की धूल झाड़ने में अपना समय गंवाते है ?

रोज सुबह कैलेण्डर देखती हूं...... एक दिन और ...... एक दिन और काटना है। क्यूं ? मैं सिर्फ एक वजह अपने जीने की खोजना चाहती हूं, जिस पर अपने दिनों को टिकाये रख सकूं।

यहां मैंने बहुत पढ़ा........ बहुत ......। पढ़-पढ़ कर थक जाती तो बुआ की बातें सुनती जो उनके स्वर्गीय पति की बाबत होती...... सब कुछ जवानी से है। जवानी गयी, सब गया। 'पर मेरे पास तो जवानी है, फिर भी क्या है मेरे पास कुछ नहीं। बुआ के पास अपनी स्मृतियों का खजाना तो है। कल मैं भी बूढ़ी हो जाऊंगी... खाली वीरान खंडहर सी... बंजर... अनगिनत ख्वाबों की लाशें सीने में दबाये...

कुछ पुरानी किताबें पढ़ो तो लगता है उसके पात्र किसी और ग्रह से पृथ्वी पर टहलने चले आये हैं। घूमते हैं........ यात्राओं पर निकल जाते हैं। आग तापते हैं, गिरती हुई बर्फ में पेड़ों की छायायें देखते हैं।........ उनका जीवन खाली नाव सा समंदर की लहरों पर हिचकोलें खाता जाने कहां से कहां चला जाता है।

10 अक्टूबर समय—रात

कुछ पुरानी किताबें पढ़ो तो लगता है उसके पात्र किसी और ग्रह से पृथ्वी पर टहलने चले आये हैं। घूमते हैं........ यात्राओं पर निकल जाते हैं। आग तापते हैं, गिरती हुई बर्फ में पेड़ों की छायायें देखते हैं।........ उनका जीवन खाली नाव सा समंदर की लहरों पर हिचकोलें खाता जानेक हांस ेक हांच लाज ाताह ै ाह मने तो कितने पालों का इंतजाम किया, दिशासूचक यंत्र लगाये...... तूफानों से लड़ते-भिड़ते जिस राह पर अपने जहाज को डाला........ देखते हैं कि आगे एक बड़ी चट्टान है...... अब इसे तोड़े बिना उस पार नहीं जा सकते और सोचते हैं कि तोड़े भी क्यों ? उस पार जाना किसे है और क्यों ?

कभी-कभी जब मैं डायरी लिखती हूं.... मेरा जमा हुआ अकेलापन बूंद बूंद पिघलता है.......। बेहद भाग-दौड़ के दैनिक व्यस्त तकलीफ देह दिनों में, जब इन दिनों को गुज़ार देना ही मेरा एक मात्र मकसद होता है यह बर्फ की सिल्ली मेरे भीतर लगातार बड़ी और सख्त होती जाती है। मैं एक हथौड़े के धमाके से इसे तोड़ देना चाहती हूं। आंसू मेरी छाती की कोटर में जमा होते जाते है....... मैले और सारे आंसू जिन्हें मैं बाहर नहीं फेंकना चाहती, एक दिन कोटर भर जाता है और खारा पानी रिसने लगता है। क्या लिखना एक तरह का रोना भी है...... अपने दुख और यातना के गले लगकर....... तभी तो लिखकर बाज वक्त मैं ऐसे उठती हूं जैसे रोकर उठी हूं गीली, बोझिल, उदास पर निर्भार सी............

15 अक्टूबर, समय रात

देखती हूं उन दोनों को उनकी गृहस्थी में ..... पुरुष क्या उम्मीद करता है औरत से कि वह उसे प्राप्त हो जाये और उसके घर संपत्ति का न सिर्फ संरक्षण करे बल्कि वह अपने मादा होने को गौरान्वित भी महसूस कराये। और औरत ? क्या वह सारी उम्र एक ऐसा जाल बनाने में नहीं व्यस्त रहती जिससे पुरुष कभी चाहकर भी बाहर न निकल सके, सोसायटी दोनों की मदद करती है। इन्हीं मूर्खताओं से चलती पलती और फलती है सोसायटी। बुद्धिमान, अपना आश्रय कहीं और खोजें.....।

23 अक्टूबर 1996, समय रात

26 अक्टूबर को दीपावली है। पन्द्रह-बीसि दनघ ारक ीस ाफस फाईम ें लगग ये ास बनेन येक पड़े ि सलवायेह ैं। मम्मी ने मुझे भी दो सूट भेजे हैं। आज अचानक उसकी बीवी को दो दिन के लिये मायके जाना पड़ा है..... कोई बीमार है। वह नहीं जाना चाहती। वह मुझे अभि के साथ अकेला छोड़कर कहीं नहीं जाती। अभि से जिद करती है साथ चलने को। वह साफ इंकार कर देता है। वह अपनी हज़ार कसमें देती है वह टस से मस नहीं होता। मर मार कर वह जाने की तैयारी करती है। जाने से पहले पाप पुण्य की अनंत परिभाषाएं मेरे सामने दोहरायी जाती हैं। मैं कोई जवाब नहीं देती। बुआ को समझाया जाता है ज़माना ख़राब है, जवान लड़की घर में है उसे अकेला छोड़ कर ही न जाये। बुआ को हर बात में हां करने की आदत ही नहीं मजबूरी भी है।

और आखिर दोपहर की ट्रेन से वह चली गयी। जाने से पहले उसकी जोर-जोर से बातें करने की आवाज आ रही थी। मैं जानबूझकर अपने कमरे में लेटी रही मानो पढ़ते-पढ़ते मुझे नीद आ गयी हो। अभि उसे छोड़ने स्टेशन गया ही होगा। वापस आयेगा तो सीधा मेरे पास आयेगा मैं जानती हूं।

सहसा मैं खाली हो गयी..... खाली .....ि वगतस े.....अ ागतस े. .....म ेरे पास कुछ नहीं था..... निर्भरता का अनुभव तक नहीं अचानक वह लम्हा..... जिसे तुम शिद्दत से पाना चाहते हो, तुम्हारे सामने आकर खड़ा हो जाता है और तुम नहीं समझ पाते अब क्या ?

15 दिसंबर 2005 समय रात

वह 24 अक्टूबर की शाम थी, जिसे मैं आज लिख रही हूं.....

बहुत पास से चीज़ें दिखायी नहीं देतीं..... न बहुत दूर से..... एकदम बीच का क्षण..... जब तुम दोनों तरफ ठीक-ठीक देख सको..... मुश्किल होता है उसे पहचानना.....।

वह धन तेरस का दिन था..... बुआ की पूजा लंबी चलने लगी थी। अभि उन्हें मंदिर छोड़ आया। तेज़ गति से दौड़ती दुनिया उस दिन थम-थम कर चल रही थी ।म ैं अ ार हाह ूंक हकरग याथ ाअ ैर अब आ गया था। अगले दिन उसकी बीवी आने वाली थी..... फिर सब कुछ पहले सा हो जायेगा। हमारे पास वही एक दिन था.....

मुझे सच इस वक्त ठीक ठीक याद नहीं है मैं क्या सोच रही थी क्या महसूस कर रही थी ?

वह जिस वक्त वापस आया, मैं बरामदे की सीढ़ियों पर बैठी थी..... हल्की सी ठंड थी शाम की जाती हुई धूप.....। थोड़ी देर बाद दिये जलाने का वक्त हो जायेगा। वह मेरी बगल में आकरब ैठग याम ेराह ाथअ पनेह ाथम ें लेते हुए। अचानक एक तेज़ लहर मेरे भीतर उठी जाने खुशी की थी या डर की या कुछ और .....। अपने भीतर की सांय-सांय में मुझे उसकी आवाज़ सुनायी ही नहीं दी। वह धीरे-धीरे कुछ कह रहा था..... वह उठा और मेरा हाथ पकड़कर मुझे भी उठा दिया.....। वह मजबूत और मैं लड़खड़ते कदमों से भीतर आये। उसने दरवाजा बंद कर दिया और मैं जैसे उसकी बांहों में ढह गयी। उसने बड़ी सावधानी से मुझे संभाल लिया..... ओह..... कितने जन्मों की प्यास मेरी छाती में इकठ्ठी होते-होते बर्फ बन गयी थी..... अचानक ही बर्फ की वे दीवारे टूट-टूट कर गिरने लगीं। उसकी उंगलियां जहां जहां मुझे छूती, वहां वहां मैं चट चट चटखने लगती उस क्षण मुझे लगा, कोई अपने आघात से मेरे टुकड़े-टुकड़े कर दे –

'अभि क्या ये ठीक होगा ?' मेरे होठो से पता नहीं कैसे निकला जब वे उसके कानों में करीब थे।

इस प्रश्न का कोई अर्थ है इस वक्त ? बिट्टू, मैं तुझे बचपन से चाहता हूं।

'पर..... रिश्ता.....?' मेरा स्वर टूट गया।

'रिश्ते मन के होते हैं बिट्टू..... तू बता, क्या तू मुझे अपना भाई मानती है, नहीं न ? फिर इतना ढोंग करने की क्या जरुरत ? एक दिन मिला है ये हमें, फिर न जाने कब..... जी लें। और सुन, मना करेगी तो उठकर चला जाउंगा मैं, बस एकब ारक हद ेना.....ब ोलक याच ाहती है..... यह तो तुझे खुद पता नहीं.....।'

हां, मुझे कुछ नहीं मालूम, बस भीतर एक दिया जलता रहता है।

कुछ पता नहीं था एक जिस्म में दोनों हैं या दो में एक। एक अनुभव पूरी जिन्दगी बदल देता है या पूरी जिन्दगी एक अनुभव को सनसनी बना देती है..... मैं भूखी थी..... हम भूखे थे और एक दूसरे को निगल रहे थे कि भर सके। देह क्या अजगर होती है ? एक अजगर से लिपटता दूसरा अजगर.....।

उस दिन पहली बार जाना वह भी उसके बिस्तर से उठने के बाद कि मनुष्य को सिर्फ भूख तोड़ती है..... चाहे वह किसीभ ीि जस्मक ीह ो।इ सीके स ामने सारे स्वाभिमान और तपस्या के किले अपने कंगूरे धूल में मिलाते देखे जा सकते है और..... और..... सारी आकांक्षायें आदिम होती है।

और थूक दिया मैने उन झूठे रिश्तों, झूठी नैतिकताओं और झूठी मर्यादाओं के मुंह पर.....। जो मनुष्य की बेसिक बाहरी भीतरी जरुरतों को नज़र-अंदाज करके बनायी जाती हैं और हर बार अपने काले मुंहों पर नया-नया रंग चढ़ाती हैं.....।

और आज मैं यह सब क्यूँ लिख रही हूं ? मैं जो बिट्टू से डॉ. सुनीता वर्मा बन गयी हूं, सायकाट्रिक्ट..... और मैं कहती हूं सारी दुनिया के तमाम पेरेन्ट्स से कि जो दुनिया तुम अपने बच्चों को दे रहे हो वह इतनी नफरत हिंसा, कुंठा, झूठ, लहू और रिस रहे जख्मों के मवाद से लिथड़ी है कि कैंसे देखेंगे वे इसमें अपनी वास्तविक शक्ल ? और नफरत से पैदा हुए बच्चों की शक्ल कैसी होती है ? देखा.....

एनी वे, मुझे कभी-कभी मनु की याद आती है। क्या कहा था उसने अपना

अंडा खुद ही फोड़ना पड़ता है। मैंने किसी सयानी चिड़िया का इंतजार नहीं किया जो अपनी चोंच से खटखटाये..... और अपना अंडा वक्त से पहले फोड़ दिया..... और ये जो पीला-सफेद द्रव्य दिखाई दे रहा था फैला हुआ..... ये न जाने कितनी संभावनाओं का नष्ट हो जाना है.... और इससे लिथड़े हुए मेरे हाथ मुझे किसका अपराधी बना रहे हैं मनु ? ◆

❑

■ **कहानी** – रजनी गुप्त

चिन्दियां

इसे देखकर लगता कि मां अपने बच्चे का आइना होती है जिसमें देखती हैं वह अपने बच्चे की भावनाएं। एक इशारे से समझ जाती है वो लेकिन उसकी मां सब समझते हुए भी नासमझ क्यों बनी रहती ? आखिर उसकी परवरिश की नींव इतनी कमज़ोर, इतनी पोली और इतनी भुरभुरी क्यूंकर होती गई ?

'आप दायां पैर बायीं तरफ मोड़ते हुए दायां हाथ बायीं तरफ पीछे पीठ की तरफ से ले जाइए..... नहीं, नहीं..... ऐसे नहीं....., अच्छा, लो, मैं खुद करके दिखाती हूं,... मुझे देखिए, इस तरह मोड़ना है.....।'

दीपा ने अपने शरीर को सिकोड़कर दाएं बाएं पैर को विपरीत दिशा की तरफ खींचा और फिर इसी तरह हाथों को भी इधर उधर घुमाते हुए देह को तकरीबन एक कछुए की तरह समेट लिया।

'बाप रे, ये तो बहुत मुश्किल आसन है.... न, मुझसे नहीं होगा।

'कैसे नहीं होगा ? कोशिश करके तो देखिए....'

एक बार फिर से दीपा ने मीता के शरीर के हिस्सों को इधर उधर से मोड़ा और हंसते हुए बोली–

'मैम,ह ोग यान ? अ ापत ोठ ीकस` कोशिश ही नहीं करती। कोशिशों से क्या नहीं हो सकता ? क्यों नहीं होगा ? अब आपको रोज़ की तरह 20 बार सूर्य नमस्कार करना है।'

–'तू आती है तो सच्ची में हो जाती है कसरतव रनाह मारेन सीबम`ेंत ोम रनेक ी भी फुर्सत नहीं।' योगासन संस्थान की मालकिन ने दीपा की तरफ देखते हुए बोली। ऐन मौके पर उनकी नन्ही बेटी आर्ची आ गई और सीधे उनकी पीठ पर सवार।

'लो, हो गया सूर्य नमस्कार, देख रही हो इस ऊधमी को ?'

'अच्छा, इसे लेकर मैं छत पर निकल जाती हूँ। ऐ आर्ची, हम लोग छत पर चलकर पतंग उड़ाएंगे और बॉल से खेलेंगे।'

'हां, हां.... छत पर चलेंगे।' अब वह खुश होकर चहकने लगी।

सुबह की ताजी हवा पूरे विस्तार के साथ आकाश से ज़मीं पर निर्द्वन्द्व भाव से विचर रही थी जिसे सूंघते ही दीपा के सोए सपने फिर से अंकुआने लगे। आसमान में उड़ते पंछियों के मीठे प्यारे बोल उसके भीतरक ीज कड़ोंक ोख ोलउ न्मुक्तताक ा अहसास कराने लगे। काश! कि वह भी इनकीत रहक हींभ ीफु र्र-फुर्रअ ाज़ादीस` उड़ने का सपना साकार कर पाती। अकेली जान तो कैसे भी कहीं भी रहकर अपना पेट भरने लायक काम कर ले मगर उसका ये कित्ता बड़ा कुनबा! जहां हर रिश्ता बेमानी, झूठा और बनावटी। उफ! फिर भी तो हम एक दूसरे के साथ रहने का ढोंग क्यूं करते रहते हैं ? इन रिश्तों की जकड़नों से उसका गला फंसने लगता, मगर वह क्या करे ? कितने सालों से वह लगातार घर में सबकी इच्छाओं का खयाल रखती आयी है। अब तो उसकी आदत-सी पड़ गयी है अपनी इच्छाओं को बुरी तरह कुचलने– मारने की। इसके सिवाए और चारा भी क्या बचा था उसके पास ?

मैडम आए दिन कहती रहती हैं, संयुक्त परिवार के कितने मजे! क्या खूब कहा ? मां-बाप, भाई-बहन, दादा-दादी,

उपन्यास, कहानियां, कविताएं लिखती हैं। समीक्षा भी लिखती हैं। इन दिनों 'एक न एक दिन' उपन्यास से चर्चा में हैं। साहित्यिक पत्रिका कथाक्रम की सहायक सम्पादिका। हिन्दी साहित्य की प्राय: सभी स्तरीय पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित। निकट के अगले अंक से भारत ब्यूरो प्रमुख। निकट में पहले भी प्रकाशित। इस अंक में उपस्थित हैं। अप्रकाशित कहानी 'चिंदियाँ के साथ'।

संपर्क –
18, Adhikari Avas, 3,
P.N.Road, Lucknow, U.P.
Mobile - 9450457073

नाना-नानी, मामा-मामी, चाचा-चाची और ताऊ-ताइओं से भरा पूरा परिवार है तो, मगर किस काम का ? मुसीबत के समयक ैनि कतनेक ामअ ाया? िकससे कहे वह अपनी तकलीफें ? सच है कि मां-बाप की परिवरिश से बच्चों का जीवन संवरता है। अब इस आर्ची को ही देखो – कित्ता ख्याल रखती है मैडम इसका। चौबीसों घंटे आर्ची की फरमाइशें पूरी करने में जुटी रहती। इसे देखकर लगता कि मां अपने बच्चे का आइना होती है जिसमें देखती हैं वह अपने बच्चे की भावनाएं। एक इशारे से समझ जाती है वो लेकिन उसकी मां सब समझते हुए भी नासमझ क्यों बनी रहती ? आखिर उसकी परवरिश की नींव इतनी कमज़ोर, इतनी पोली और इतनी भुरभुरी क्यूंकर होती गई ? दीपा ने जब से होश संभाला तभी से आए दिन पेट की किल्लत से ही जूझना पड़ता। दाल रोटी की वजह से आए दिन घर में किच-किच मची रहती। यूं भी इतने बड़े घर में सबको बनाकर खिलाने में ही मां निढाल हो जाती। अगर ऐसे में वो अपने बच्चों के खाने पर ध्यान देंगी तो बवाल नहीं मच जाएगा क्या ? खास तौर पर उसके लिए जिसके पति की नौकरी चली गई हो।

पापा ने शुरू से ही हमें बड़े बड़े सपने दिखाए..... और बड़ी उम्मीदों से बच्चों को पढ़ाना लिखाना चाहा मगर उन सपनों को छूने के लिए बुनियादी चीज़ें ही हाथ से गायब होने लगी थी। न जाने अचानक किससे पापा की कहा-सुनी हुई कि वो अचानक तनतनाते हुए घर चले आए और फिर कभी भी उस बारे में किसी से कुछ नहीं कहा लेकिन हमारे तो पैरों तले की ज़मीन ही धंसने लगी थी। उन सपनों के साथ जीने के आदी जो हो गए थे हम मगर अब क्या होगा ?

आए दिन उस बड़े घर में लड़ाई झगड़े बढ़ने लगे थे। मौके बेमौके ताई बड़बड़ाने लगती और हमें ताने सुनाने का कोई मौका नहीं छोड़ती। उनके मुंह से निकली किसी बात पर यदि दीपा के मुंह से न निकलती तो वे तड़ातड़ गालियां बकने लगती जिन्हें सुनते ही उसे दहशत होने लगती। कम तो चाची भी नहीं थीं। बात बात पर चिड़चिड़ाते हुए हुक्म चलाने लगती – 'ऐ दीपा, अभी तक बर्तन साफ नहीं किए तूने ? बहाने से किताबोंम ंअ ंखेंग ाड़ेप ड़ीर हती,क यों, कामचोरी सीखती जा रही है ?'

सुनते ही वो तैश में खड़ी हो गई तभी मां ने इशारे से रोकते हुए कहा– 'तू अपनी पढ़ाई कर। ये सब मैं निबटा दूंगी।

–' बड़ी लाटसाब बना रई उसे। फीसक ाब ंदोबस्तह ुआक ुछ? 'उ न्होंने डपटते हुए पूछा।

'हां,..... गर्दन नवाए वे बर्तन धोने लगी'।

'क्या कहा ? हो गया इंतजाम ? कैसे ? कहां से लायी तू इतना पैसा ? बड़े घमंड से इतरा रई जा तौ।'

'ऐ,क ानख ोलकरस ुनल ,इ सघ ार में मुफ्त की रोटी तोड़ने को नहीं मिलेगी तुम लोगों को। हाँ, कहे देती हूं। महीने के खर्चे के पूरे तीन हज़ार देने पड़ेंगे।' वे ऐंठते हुए जोर-जोर से बोलने लगी।

'अम्मा, क्या अनाप शनाप बके जा रही हो ?' बाहर से भीतर घुस रहे दीपा के पापा अचानक चिल्ला पड़े।

'खरीख रीक हनेस न हींड रतीम ं। महीने का खर्चा कौन भरेगा तुम्हारा ? हमसे नहीं ढोयी जाएगी तुम्हारी ये बढ़ती जिम्मेदारी। पहले से हैं तो दो लड़कियां। ये बच्चा अपने मायके में ही जनना। हमारे पास नहीं है इतना पैसा।

..... मां का बढ़ा हुआ पेट देखकर आँखें तरेरकर बीच में टपक पड़ी ताई – 'हम क्यों उठाएं इनके कुनबे का बोझ ?'

'और इनका कुनबा ? 'दीपा ने चाची के बेटे को देखते हुए चट से जबाव दिया।

'मुझसे कह रही है ये, मुझसे ? मेरे पापा के पैसों से घर चलता है और मेरे ही लिए ऐसा बोला इसने ?

तभी चाची बीच में भनभनाते हुए तुनक पड़ी– 'ए लो, अगर ऐसी बात है तो आज से ही मैं अलग चूल्हा धर लेती हूं।

'चुप नहीं रह सकती तू ?' तड़ाक... से...ए कज़ ोरदारच ंटाज ड़ि दयाम ंन े उसके गाल पर। वह मन मसोसकर छटपटाकर रह गयी। क्या करती ? अरसे सेअ लगर हनेक ाब हानाख ोजतीच ाची अगले दिन से ही वे अपना बोरिया बिस्तर समेट अलग रहने लगी। अब क्या होगा ? उनके साथ रहते हुए कभी कभार जो दाल रोटी नसीब हो जाती थी, अब उसके भी लाले पड़ने लगेंगे क्या ? उसकीक टखन्नीद ादीक ोअ पनेक माऊ पूतों से तो लगाव था लेकिन निखट्टू नाकारा बेटे को देखते ही वो भड़क पड़ती – 'दिन भर बैठ बैठ खाट तोड़ता रहता। बाहर कुछ कामधाम तलाशने क्यों नहीं निकलता ? कब दिमाग में घुसेगी चार पैसे कमाने की बात ? बोल ?

मौनी बाबा बने पापा औंधे मुंह खटिया पर पड़े रहते। काली रात के डरावने साए बड़े बड़े भरते हुए पापा को अपने जद में ले लेते। फिर वे दिन रात उसी में कैद होकर छटपटाते रहते। आए दिन उनके मान सम्मान की धज्जियां उड़ाते हुए चचेरे भाई बहनों को खासा रस मिलता। तो ऐसा है हमारा संयुक्त परिवार जिसका एक ही मतलब-सिर्फ अपना काम साधो और चलते बनो। जबकि ये मैडम तो अक्सर कहती रहती– क्याम ज़ेह ैंस ंयुक्तप रिवारके ज बस ब मिलजुलकर खूब धूम धड़ाका मचाते

मां के जाते ही सारा काम दीपा के मत्थे। उधर छोटे चाचा की नई नई शादी जो हुई थी, सो वो नई नवेली के नखरे साधने में लगे रहते। सरकारी नौकरी के सतरंगी पंखों पर सवार चाची की आवभगत में जुटी रहती दादी के पास कहां फुर्सत थी दीपा के लिए ?

होंगे तो क्या समां बंधता होगा ?

'दीदी,ब ॉल,ब ॉल. ...द ेखतेद ेखते बच्चे ने बॉल को दूर फेंक दिया था।

अब क्या होगा ? मेरी वो रिंगिंग बॉल, वही चाहिए मुझे, वही.... हूं वही।'

पड़ोस की बालकनी में पड़ी उस बॉल को लाने वह झटपट नीचे उतर पड़ी। बालकनी में खड़ा लड़का उसे घूर घूरकर देखने लगा।

'बॉल चाहिए, आपकी बालकनी में पड़ी है' .... वह हिचकिचाते हुए बोली।

'तुम यहां क्या करने आती हो ? मसाज ?'

'अरे नहीं, मैं तो योगासन सिखाती हूं।'

'मुझे भी सिखाओगी?'

'प्लीज मुझे बॉल दे दीजिए.... बोलते हुए उसने खुद को मजबूती से समेटा। अंदरूनी गुस्से को जज़्ब करते हुए उसे अनायास याद आया कंप्यूटर सिखाने वाला वो अधबूढ़ा आदमी।

'दीपा मैं तुझसे कोई फीस नहीं लूंगा। बस संडे को आ जाना अलसुबह, अकेले।' –

सुनते ही लगा जैसे भीतर से सब निचुड़ता जा रहा हो। अपमान से सर्वांग जलने लगा। उस पल ऐसा लगा जैसे लड़की को महज मादा क्यों समझने लगते हैं पुरुष ? क्या वह लड़कीनुमा गठरील ादकरइ धरउ धरघ ूमतीर हतीह ै ?भ लेअ ादमीक ाम ुखौटाल गाएकै से– कैसे जानवर मंडराते रहते हैं हमारे आसपास ?

एक वो दौर था जब उसकी मां को डिलीवरी के लिए मायके भेज दिया गया। मां के जाते ही सारा काम दीपा के मत्थे। उधर छोटे चाचा की नई नई शादी जो हुई थी, सो वो नई नवेली के नखरे साधने में लगे रहते। सरकारी नौकरी के सतरंगी पंखों पर सवार चाची की आवभगत में जुटी रहती दादी के पास कहां फुर्सत थी दीपा के लिए ? बल्कि वो गाहे बगाहे दीपा पर रौब झाड़ती रही – 'उठ, झटपट चाचा के लिए दो परांठे तो बना दे। दफ्तर के लिए देर हो रही है उसे। चाची को बी.एड का इम्तहान देना है।'

'दादी, मुझे भी तो पढ़ना है.... मेरे पेपर भी अगले महीने से शुरु..... 'दबी जुबान से वह कहना चाहती।

'अब और कितना पढ़ोगी तुम ? हो तोग याइ ंटर ।श ादीके ि लएइ तनाब हुत है।' वे भन्नाते हुए बोल पड़ी।

'दादी, आपने मुझे साइंस कॉलेज तो पढ़ने जाने नहीं दिया, मैं मान गई मगर अब मुझे बी.ए. करना है। मेरी सहेली कामिनी भी तो कर रही है। खुद चाची ने भीत ो....'अ ंदरक ीब ातज ुबानप रअ ा ही गयी थी।

'देख दीपा, साफ बात है, मैं तेरी पढ़ाई का खर्चा नहीं उठा सकती, बस्स।'

उमड़ते आंसुओं को भीतर धकियाने के लिए गिलास भरा पानी गुटकना पड़ा। क्या करे वह ?

'पापा की कमाई धेला भर नहीं, मां नानी के यहां। तो मैं अकेली यहां क्यों पड़ी रहूं ? मैं भी नानी के यहां चली जाती हूं।'

'फिर लौटकर मत आना, हां कहे देती हूं। देखते हैं, कब तक रख पाते है वो लोग ? ऐसा कर, अपने बाप को भी लेती जा यहां से। इसे क्यों छोड़ जा रही है यहां, किसके भरोसे ?'

'दीपा, तू नाना से बी.ए. के फार्म के पैसे ले लेना'.... खूंटे से बंधे जानवर की तरह रें रें करते हुए मिमियाने लगे पापा।

मां को देखते ही बुक्का फाड़कर रोने लगी थी वो। दिन रात बातों के अनंत किस्से चलते रहते। हफ्ते भर बाद उसके एक भाई हो गया। लगा जैसे उसे कोई आत्मीय सहारा मिल गया हो। अभी पूरा सप्ताह भी नहीं बीत पाया कि मामी ने तरेरती निगाहों से उसे देखते हुए ताने मारने शुरु कर दिए – 'भगवान ने हाथ पैर दिमाग दिया है तुझे फिर क्यों नहीं कुछ करती धरती ? पापा को समझाओ। क्या वो ताजिंदगी ऐसे ही हाथ पर हाथ धरे बैठे रहेंगे ? बड़े लाटसाब समझते है खुद को, जब अच्छी मिलेगी, तब करेंगे। पसीना बहाते नहीं बनता उससे ? नमक रोटीक ीज ुगाड़म ेंक या–क्यान हींक रना पड़ता इंसान को ? हुंह! जो भी मिले जैसा भी मिले करते क्यों नहीं ?.... उनका बडबड़ाना बदस्तूर चलता रहता लेकिन मां ने भरोसे भरी आवाज़ में टोक दिया – 'भाभी, अब चुप भी करो। अपने बूते खड़ी होने लायक ताकत बटोर लूं, बस फिर जो भी बनेगा, मैं हर हाल में करूंगी। मुफ्त की तोड़ने का मुझे भी कोई शौक नहीं।'

'मां, अपनी पढ़ाई के साथ-साथ मैं भी कुछ करूंगी।' ... अनायास हम मां बेटियां बिछड़ी सहेलियों की तरह आपस में चिपटकर रो पड़ी। नौकरी करना दीपा के सपनों में कभी शुमार नहीं था..... लेकिन ये कब उसकी जरूरत बन बैठा, इसका जैसे उसे पता ही नहीं चला। अच्छी शिक्षा माने अच्छी नौकरी, ये वो जानती थी। अपने ही घर में बच्चों की ऊँची तालीम के लिए दिन रात खटते मां बाप को देखती तो कलेजे में हूक-सी

उठती। काश! कोई उसे भी इस तरह सपोर्ट करता होता तो वह कहां होती आज? अ ामब च्वोंक ीत रहद ुनियांक ी तमाम खुशियां हासिल करने की तमन्नाएं तो धरी की धरी रह गई। जुबान खोलना तक तो उसे आता नहीं था। जब बात सहनशक्ति से बाहर हो जाती, तब जाकर कुछ बोल पाती थी और वो भी सिर्फ अपनी मां से। बी.ए. करते करते काम करने का भूत जो सवार हो गया था। भाई लेकर मां जब घर लौटी तो आर्थिक मुसीबते दिनों दिन बढ़ने लगीं। बच्चे के लिए दूध के पैसे अक्सर नहीं रहते। बमुश्किल उसे रोटी का घोल चुटकी भर नमक के साथ पिलाने की कोशिश करते रहते जब कि चाची के यहां से अक्सर सब्जियां छोंकने की खुशबू आती रहती जिसे जज्ब करके हम सब गुड़ रोटी खाकर काम चलाते।

लेकिन आखिर कब तक ? चाची तो अपना खाना बनाकर अलग रख लेती और हम तरसते रहते। कुछ दिनों बाद एक दिन अचानक दीपा के सब्र का बांध भरभराकर टूट पड़ा – ' अम्मा, आज तो दाल चावल सब्जी खाने का मन कर रहा। कितने दिनों से नहीं खाया पूरा खाना....।'

बगल से गुजरती दादी की हमउम्र राजरानी कक्की के कानों में जब ये बोल पड़े तो बे दनदनाती हुई सीधे घर में चली आई और दीपा का हाथ खीचते हुए बोली –' चल दीपा, अभी इसी वक्त तुझे भर पेट दाल चावल और साग सब्जी खिलाऊंगी। जी भरकर खाना।'

उनके यहां सुकून से बैठकर खाते हुए ऐसा लगा जैसे न जाने कब से वह भूखीप् यासीड ोलर हीथ ी ाम ुद्दतोंब ाद अमृत पीने सा आस्वाद महसूस। काकी लगातार गुस्से में दादी को भला बुरा कहने लगी। फिर पापा के बारे में पूछने पर वे बोली – ' तेरे पापा ने तो कानों में रुई ठूंस ली है। उल्टी सीधी सुनने की आदत जो पड़ गई है। क्या करें ?

'हां, वे चुपचाप आँखें मींचे पड़े रहते। मां के जगाने पर ही खाते वरना वे तो कभी खाना ही नहीं मांगते।

'क्यों नहीं तुम लोग अलग रहने की सोचते? ब गलम ेंए कक मरेक ीख ाली जगह पड़ी तो है, अरे! वही जहां गाय बंधती थी। जब तुम्हें अपनी ही कमाई का खाना है तो क्यों नहीं अलग ठिया बनाती ? कम से कम रोज़ रोज़ की किच किच तो नहीं होगी।

'सच्ची में काकी, क्या ऐसा हो सकता है ? खुशी से छलक पड़ी आवाज। काकी ने दादी से कह सुनकर वो खण्डहरनुमा जगह खाली कराई और वेल ोगअ पनेक पड़ेल त्तोंके स ाथउ स अधबने मकान में रहने लगे। धीरे-धीरे उस खण्डहरनुमा एक अधबने कमरे के आसपास चंद ईंटें लगाकर आड़ बनायी फिर खाना बनाने हेतु सिलैण्डर ले लिया। अंधेरे में सोते हुए भी हमें सुकून की नींद आती थी।

आए दिन होने वाले झगड़ों की दहशत से राहत की सांस ली। गाली गलौचव ालेउ सम ाहौलम ेंज बभ ीव ह पढ़ने बैठती तभी चाची / दादी के कटखन्ने बोल नमूदार हो उठते।

ऐसे माहौल में नाना के बोल कपूर की तरह उड़ जाते– तू निश्चित होकर क्यों नहीं पढ़ती ? मगर निसफिकर होकर पढ़ना आसान था क्या ? इधर पढ़ने बैठती, उधर आंखों के सामने घर के एक एक दृश्य जिंदा होने लगते –' बड़ी कलट्टरनी बनेगी ये दीपा.... देखो तो कैसे आंखे गड़ा गड़ाकर पढ़ रही है। बाप भी तो ऐसेई पढ़ता था। क्या फायदा निकला ? दूसरों का खाते शर्म नहीं आती इन्हें ? अरे! कुछ तो करें। ये क्या कि मुर्दों की तरह मुंह लटकाकर पड़ा रहता। कुछ नहीं तो रिक्शा खींचे या दिहाड़ी मजूरी ही करें मगर टस से मस नहीं होता नाशुकरे नंदलाल।'

नंदलाल, पॉलीटेक्निक से डिप्लोमाधारी नंदलाल..... रेलवे की नौकरी से बर्खास्त नंदलाल जिसने इस घर के लिए पाई पाई जोड़कर घर बनवाया, अपने से बड़े-छोटे भाई बहनों की पढ़ाई की खातिर दिन रात एक करके किताबें कापियॉ जुटाई हों, वही आज अगर विक्षिप्तावस्था में गुमसुम पड़ा है तो उसका इलाज़ कराने के बजाए ये सब मिलकर ऐसे कुबोल बोलने लगे हैं। राम राम, कैसा ज़माना आ गया..... ' .....पड़ोसन काकी दादी को साफ साफ बातें सुना जाती थी।

'दीपा.... दीपा, कहां चली गई तू ? आर्ची तो सो गई है।'

'आज मेरी तबियत ठीक नहीं है आंटी, कल आकर बाकी योगासन पूरे कराऊंगी।'

'मगर अपना कंप्यूटर कोर्स जरुर कल से शुरू कर देना, ये रही तेरी फीस। ठीक ?'

पैसे लेकर वह सोचने लगी – अभी तो घर से बिजली का कनेक्शन लेना है। अब तो मां ने भी घर से बाहर निकलना शुरू कर ही दिया था।.....

वे मौनी बाबा बनी सबकी बातें सुनती रहती। शायद ये उनकी मज़बूरी भी थी। मगर एक दिन – ' बहुरिया, तू मूंह ढापे क्यों सुनती रहती सास के ताने ? भगवानन ेत ुझेभ ीह ाथप ैर ि दमागि दया है फिर क्यों नहीं करती बाहर के काम ? कितनी पढ़ी है तू ?'

'मुझे कौन देगा काम ? बस, आठवीं पास हूं।'

'चल, मैं दिलाती हूं तुझे काम। अच्छा बता, क्या करेगी ? मसाला कूटने

पीसने वाला काम करेगी/या बगीचे में?'

'मैं कुछ भी करने को तैयार हूं, बस किसी तरह हाथ में दो पैसे आने चाहिए।

बस फिरक याथ ा? म ांके त ोज ैसे पंख लग गए। कुछ दिन उन्होंने बगीचे में काम किया। एक दिन मालिक बोला –' काम तो तू अच्छा करती है मगर तेरे मुंह में जुबान नहीं है क्या ?

हमेशा की तरह गुपचुप काम करने वाली मां ने उनकी तरफ तरेरती निगाहों से देखा।

'अरे घबराने की बात नहीं। मैं सोचूं तू चुप्पी क्यों साधे रहती हर वक्त ?'

'ज्यादा बोलने की आदत नहीं रही कभी।' सिर पर रखे पल्लू को तानकर पीठ को ढकते हुए वे धीमे से बोली।

'आजकल तेरी मालकिन मायके गयी हुई है....... सो शाम के खाने की परेशानी है। क्या तू शाम का खाना बनाएगी ? हां, हां...... पांच सौ दूंगा, ठीक ?'

मां ने झटपट हामी भर दी। वे सुबह सवेरे बगीचे का काम करती और शाम को खाना बनाने निकल जाती। अब घर का सारा काम दीपा के जिम्मे। इससे उसकी पढ़ाई नहीं हो पाती। इधर उसे अपने छोटे भाई को भी संभालना पड़ता। अभी एक महीना भी नहीं बीता कि अचानक खाना बनाने गई मां उल्टे पैर लौट आई –' दीपा, वो मोटू तो बदतमीज़ निकला। मैं चुपचाप खाना बना रही थी कि पीछे से आकर मुझे पकड़कर खींचने लगा। मैने भी पूरी ताकत से धक्का देकर गिरा दिया उसे और पिछले दरबज्जे से निकल भागी। कुत्ता, साला, गैंड़ा हाथी... समझता क्या है खुद को ?' वो तेज तेज बोलते हुए हांफने लगी थी।

'चलो छोड़ो इसे। जो हुआ, उसे भूल जाओ। कुछ और सोचेंगे। कुछ और करेंगे।' कहकर मां को पानी भरा गिलास पकड़ाया। चंद रोज बाद फिर वही रोज़ी–रोटी की समस्या मुंह बाए खड़ी हो जाती लेकिन अब मां ने धीरे–धीरे बाहरी दुनियां में अपनी पैठ जमा ली थी। कुछेक दिन बाद फिर से वही आंटी मां को स्वेच्छा मसाला संस्था ले गई। यहां का काम तो आज़ादी से करने वाला था लेकिन पूरे 11 घंटे तक जुटे रहना पड़ता। सूबह 9 से राज 8 बजे जी तोड़ मेहनत के बाद पहले महीने की पगार मिली थी – मात्र छह सौ रुपए। वे थककर चूर होकर लौटती। धीरे–धीरे उनके शरीर की हालत बिगड़ने लगी। बैठे–बैठे चक्कर आने लगते। तभी अचानक एक सुनहरा अवसर हाथ लगा।

'खाना बनाने का काम करोगी ? फिर दो घंटे हमारा बच्चा भी देखना पड़ेगा। पूरे हजार रुपए।'

पटरी से उतरी गाड़ी अनायास फिर से दौड़ने लगी थी। हम सब चहकने फुदकने लगे। सुबह 11 से 12 खाना और दोपहर 3 से 5 बच्चा देखना यही महज 3 घंटे का काम। वे वहां सलीकेदार तरीके से खाना पकाती, बच्चे की देखरेख करती और बदले में ढेर सारे पुराने कपड़े बटोर लाती।

पहले सफेद बादलों का एक बड़ा सा गोल पहाड़ बना फिर धीरे–धीरे उसके आसपास रुई के छोटे–छोटे पहाड़ बनने लगे। क्या ये परीलोक है ? नरम नाजुक फुदकते खरगोशों से भरा सफेद आकाश। चारों तरफ ऊंचे नीचे पठार और पहाड़ियों के बीच से गुज़रते हुए न जाने कितनीऊ ंचाईप रउ ड़तीह ोज ार हीथ ी दीपा। उड़े भी क्यों न ? सेकेण्ड डिवीजन बी.ए. जो पूरा करते ही योगासन संस्थान में नौकरी जो मिल गई। दो हजार रुपए कम नहीं होते महीने के ?

अब तो दीपा का मन हवाईजहाज से भी दुगुने वेग से भागने लगा। लगा जैसे रुईनुमा सफ़ेद फरों वाली परी बनकर वह तेज़ तेज़ कदमों से दौड़ती हुई अपने किसी अनजाने मनमीत से मिलने जा रही हो और ऐसी हालत में उसे कोई रोके टोके न। योगासन सिखाते सिखाते तमाम तरह की थुलथुल औरतों से वास्ता पड़ता। इनमें से कुछ तो अच्छी नौकरियों मेंथ ींअ ौरक ु छघ रोंप रख ातीअ घाती। इनके स्थूलकाय अंगों पर जमी चर्बी को हटाने के लिए वो जहाँ तहाँ मशीनें फिट करती और फिर शुरू होती मसाज। मालती आया मसाज करते हुए अक्सर हंसती हंसाती रहती। औरतों के चटपटे किस्से सुनाने में उसे महारत हासिल थी।

–'ऐ दीपा, इधर आ, ये जो नीली जींस वाली है न, इसके दो तीन चक्कर चलर हेह ैं।'क लइ सकाप तिअ ायाथ ा इंक्वायरीक रनेश ाम6 ब जेत कघ ारज ो नहीं पहुंची थी।' वह रस ले लेकर बोलती जा रही थी।

'आप क्यों खामखां तांकाझांकी करती रहती हैं ? कहीं गई होंगी। हमको इससे क्या ? आपकी ये आदत कतई ठीक नहीं।' वह गुस्से से बोली।

'पागल हो तुम तो। किसी के साथ थी जो ज़रुर ये, पता नहीं कहां ? समझी कुछ? 'अ बत ोअ ाँखेंम टकाम टकाकर बोलने लगी जैसे कोई बड़ा भारी रहस्य खोलने जा रही हो।

'फालतू की बातें पसंद नहीं मुझे। ये सब किस्से हमें नहीं सुहाते। हमें अपनी नौकरी से मतलब, बस्स। औरों की जिंदगी में तांक झांक करना गलत बात।' लेकिन दीपा की नसीहत सुनने की परवाह उसने कभी नहीं की। वह तो अपनी ही रौ में बड़बड़ाती हुई खुद ही हंसी से दोहरी होती रहती। दीपा ऐसी बातों को आंखें फाड़कर चौकन्ने भाव से सुनती रहती लेकिन उसके भीतर तो फड़फड़ाते रहते उसके सोए सपने। फॉर्म

भरते समय सपनों की भीड़ लगनी शुरू ही जाती...। बैंक क्लर्क से लेकर टाइपिस्ट स्टेनो खाली की खाली जगहों परल ालर ंगस े िनशानल गातीद ीपाक ो देख उसका सहकर्मी बोला – 'दीपा, ऐसे इधर उधर फॉर्म भरने में पैसा बर्बाद करने से क्या फायदा ? हां, एक रास्ता है मेरे पास..... जिससे तुम्हें पक्की नौकरी मिल सकती है।'

'क्या ?' 'वह आतुरता से पूछ बैठी।

'आश्रय संस्था में आया की नौकरी करोगी? अरे! बड़े बूढ़ों की सेवा करने में कैसा कष्ट ? काम काम होता है, नहीं?'

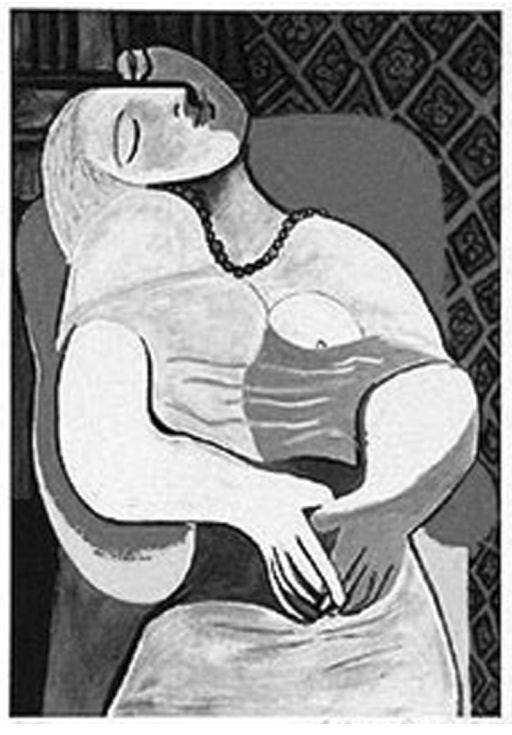

ऐसी बातों की सुनी अनसुनी कर देती वह। सुनकर खींझ भी उठती। जो देखो, वही ऐसे वैसे काम करने की नसीहतेंद ेतार हता ाक ेाईढ ंगक ीस लाह देने वाला ही नहीं। हालांकि उसे इसका

बखूबी अहसास तो ही कि आज के कठिन कांपिटिशन के दौर में उससे अच्छे और उससे ज्यादा पढ़े लिखे लोग इधर-उधर भटकते हुए रिश्वतों और सिफारिशों की भीड़ में कहीं गुम होने के लिए अभिशप्त हैं। फिर भी न जाने क्यों उसे अपनी मेहनत, ईमानदारी और लगन पर भरोसा था। उसे हमेशा यही लगता, देर चाहे जितनी हो जाए मगर एक न एक दिन उसे जरूर मिलेगी नौकरी।

'देखो, देखो, दीपा के नाम हज़ारों की दौलत छोड़ गया है बाबूलाल। बसीयत में साफ साफ लिखा है। सुना है, कोई सर्टिफिकेट है दीपा के नाम। देखा तुमने दीपा की अम्मा ?

'दीपा ने भी तो कितनी सेवा की थी अपने बाबा की। जब तब खटिया पर बैठकर कुछ न कुछ खिलाया करती और फिर सुलाकर ही घर लौटती थी....'

दबी जुबान से बोली दीपा की मां।

जितने मुंह, उतनी बातें। दीपा के नाम पचास हजार की मोटी रकम...... ये ऐसी खबर थी कि जो भी सुनता, उसके पेट में दर्द शुरू होने लगता। चकित विस्मित, अवाक थी दीपा। उसे अचानक विश्वास ही नहीं हुआ लेकिन जैसे ही वह घर में घुसी, सब भौचक्के से उसे निहारने लगे गोया वह कोई अजूबा बन गई हो। कहीं किसी षड्यंत्र के तहत तो नहीं हथिया लिए इसने ? सभी ने इसे उसकी कोई चाल समझा। वे सब मुंह बनाकर एक किनारे खड़े हो गए जैसे उसने कोई अपराध किया हो। बाबा की तेरहवीं के बाद कुछ दिनों तक तो वो सतरंगी सपनों के लाल, हरे, नीले जैसे असंख्य रंगीन बल्बों में खोयी रही लेकिन महीने भर के अंदर ही जब उसने इस संबंध में खोजबीन करनी चाही यानी एन.एस.सी प्रमाणपत्र मांगने के लिए जैसे ही मुंह खोला तो उसके सपने कपास की तरह फर्र फर्र उड़ते नजर आए। न जाने कब और कैसे उसके चाचा / ताऊ वगैरा ने वो प्रमाण पत्र हथिया लिया। काफी मशक्कतों के बाद जो फोटोप्रति मिली भी वो कोशिश भी बेकार। पता चला कि जब तक चारों भाई मिलकर साइन नहीं करते, तब तक वह एक पैसा भी नहीं निकाल सकती। इसके लिए कोर्ट

बैंक क्लर्क से लेकर टाइपिस्ट स्टेनो खाली की खाली जगहों पर लाल रंग से निशान लगाती दीपा को देख उसका सहकर्मी बोला —'दीपा, ऐसे इधर उधर फॉर्म भरने में पैसा बर्बाद करने से क्या फायदा ? हां, एक रास्ता है मेरे पास..... जिससे तुम्हें पक्की नौकरी मिल सकती है।'

कचहरी जाना पड़ेगा। सक्सेशन सर्टिफिकेट के बाद ही कुछ बात आगे बढ़ेगी। वे एक एक करके सबके पास गईं दनर ातइ सीम रीचिकाके च क्रव्यूह में भटकती रहती। एक दिन सुबह सवेरे चाचा के पास गई तो चाची ने उल्टे मुंह चार बातें सुनाकर लौटा दिया।

बैंक में पता करना चाहा तो वहां के बाबू बोले-पहले कानूनी प्रक्रिया पूरी करे। मृत्यु प्रमाणपत्र, सक्सेशन प्रमाणपत्र और न जाने कौन कौन से कागजातों की गठरी..... सबको इकट्ठा करो। वे एक मुंह से जल्दी-जल्दी इतने सारे काम उगलते जाते जिसे सुनकर उसके हाथ पांव फूल जाते। इस तरह दौड़ते भागते पूरे 6 महीने निकल गए मगर कहीं कोई सफलता नहीं। कुछ नहीं मिल पाया।

घर पर आर्थिक समस्या फिर से मुंह बाए खड़ी हो गई। अक्सर सोचा हुआ पूरा नहीं होता। न जाने क्यूंकर ऐसा अघटित घट जाता कि मुट्ठी में आया सुनहरा मौका भी सर्र से फिसल गया।

दुनिया की स्वार्थपरता की काली आंधी कीं करणेंअ ांखोंम ेंभ रज ातींअ ौरप ैरों तले बिछते जाते कंटीले तार। लो, भागो। और भागो पैसों की मायावी दुनियां की तरफ। कहां भागे जा रही थी वह ? उसके आवेग को रोकने कालसर्प रास्ता रोके खड़े हो जाते। इतनी जल्दी अतीत के चैप्टर को क्यों भूलने लगती वह ? जब सबके सामने उसके मान सम्मान की धज्जियां उड़ाई जाती थी। कितना जबरदस्त शक भरा है चाचा / ताऊ के मन में ? आस्तीन में पलते इन सांपों को परे झटककर वह चाहकर भी कहां भाग सकती है ? तो सारा पैसा सरकार का हो जाएगा ? कई कई रातों वह पैसा पाने की तरकीबें सोचते गुज़ार देती। मेहनत से बचाया पैसा कोर्ट कचहरी में फुंकने लगा। वकील साब ने सबसे पहले हज़ार रुपए झटक लिए लेकिन फिर भी काम नहीं बनता नज़र आता। जब तक के सब साइन नहीं करेंगे तब तक कुछ नहीं हो सकता। वे ऐसा नहीं करेंगे। पूछने से कोई फायदा नहीं। फिर वही दलीलें। अब क्या होगा ? यानी उसके नाम को वो पैसा कूड़ा कर्कट की तरह निष्प्रयोज्य। थकी हारी दीपा फिर से योगासन केंद्र जाने लगी। बीच बीच में उन प्रमाणपत्रों की छायाप्रतियां उसकी आंखों के सामने तैर जातीं। कितनी बदनसीब है कि उसके पास पैसा होते हुए भी वह कंगाल की कंगाल रह गई। उफ! सोचते ही पचास हजार की रकम आंखों के सामने से हटने का नाम नहीं लेती। अगर ये मिल जाते तो वो क्या क्या नहीं कर डालती ? कितने सारे सपने देख डाले थे उसने ? खुद का योगासन केंन्द्र खोलती..... वगैरह वगैरह। मान लो मिल भी जाते तो क्या उसके पास रह पाते ? कोई भी मांग लेता या उसे देने पड़ जाते। अरे! इतनी सी बात उसके दिमाग में पहले क्यों नहीं आई ? नहीं नहीं, इस चक्रव्यूह में फंसने से है कोई फायदा ? दलदल है ये। इसमें घुसने की जितनी भी कोशिश करती, वह दुगुने वेग से अपनी भंवर में खींचने लगता। अबूझ पहेली सा है ये जीवन। कितना भी सोचूं मगर शून्य से शुरू जीवन की यात्रा शून्य पर ही खत्म हो जाएगी। जीवन और मौत के बीच सतत चलते संग्राम में कैसी हार और किसकी?

अनायासउ सप लउ सेन ज ानेक या सूझा .... तेज़ तेज़ कदमों से अंदर ही अंदर चलती हुई भीतर की कुठरिया की तरफ चुपके से गई। बक्से में लटकते ताले को घूरकर देखती रही। फिर दादी के सिरहाने रखी चाबी को मुट्ठी में दाबे हुए आधी रात में चारों तरफ छाई कालिमा से लुप्त होते चांद की तरफ देखा। चाबी को दबाए उसने बक्सा खोला–तो ये है वो कागज.... लेकिन किस काम का ? अंधेरी रात में अकेली खड़ीद ीपान ेउ सक ागजम ेंछ पेअ क्षरों को बड़े ध्यान से देखा और देखते–देखते उसने उसकी चिंदी–चिंदी करके हवा में उड़ा दी। मुद्दतों बाद उसके अंदर अपूर्व खुशी का अहसास जागा। उसने लंबी लंबी सांसे भरी और ऐसा लगा जैसे अरसे बाद उसके शरीर के पोर पोर में स्वच्छंद हवा घुसती जा रही है। वह भार रहित होकर ऊंचे आसमान की तरफ पंख पसारे न जाने कितने किलोमीटर की ऊंचाई पर लदे बादलों को भेदकर इत्मीनान से निर्द्वन्द उड़ान का लुत्फ उठाती रही।

अचानक उसने देखा कि इन रंग बिरंगीं चिन्दियोंके न न्हेन न्हेप रं नकले शुरूह ोग ये।अ रे!उ सेए ेसाक योंल गने लगा जैसे उसके भीतर से सब कुछ निचुड़कर खाली होता जा रहा है ? देखते देखते उसे अपने वजूद की नन्ही नन्ही चिन्दियां उड़ती नजर आयी – सड़क पर, पेड़ के पत्तों पर, यहां वहां सब जगह बिखरी चिन्दियों को समेटने के लिए वह बौराने लगी। इधर जोरों से अंधड़ चलना शुरू हो गया था जिससे बेखबर उसकी आंखें अभी भी चिन्दियों पर अटकी थीं।◆

❑

■ **कहानी** – गीताश्री

दो पन्ने की औरत

बातें और भी हो सकती थीं यदि रंजना बीच में न आती। रंजना सक्सेना से थोड़ी-सी सीनियर थी। आसावरी और इस बात की थोड़ी-सी ही खुशी थी उसे बाकी खुशियों को रंजना की चालाकियों ने निगल लिया था।

वह थी ही ऐसी या ऐसी बनाई गई थी..... यह बताने के लिए वह कई पन्ने घिसने वाली है। डायरी के सारे पन्ने भर देने के बाद भी वह संतुष्ट नहीं थी। उसे मालूम था एक दिन दुनिया उसे कई पन्नों में देखकर अपना नज़रिया बदलेगी। फिलहाल वह अपने दो पन्नों में रहती है। उसी में उसका घर, उसके सपने और औरत का अपने होने को लेकर क्षमाप्रार्थी न होने का विश्वास रहता है। चश्मे के अंदर वह अभी भी एक खूबसूरत लड़की थी और चश्में के बाहर देश की जानी-मानी पत्रकार, इसीलिए अपने बॉस यानी संपादक को चश्मा उतारकर देखती थी। आसावरी ने आज भी बॉस को सीढ़ियों पर देखा। कौन जाएि लफ्टमें....व हांन त ोप सीनाअ ाता है और न बॉस को पसीना देखने का मजा। बॉस ने बिना चश्मा उतारे ही गर्दन के नीचे तक पसीने से पहले फिसलकर पसीना देख लिया था। उसकी गंध भी महसूस की और मुस्कुराकर अपने दो पन्ने को 'हेलो' कह दिया।

'आसावरी केबिन में आना....!'

बिना कुछ कहे आसावरी मुस्कुराती हईब ॅसके प ीछेह ोल ी।च श्माभ ील गा लिया। अब वह पत्रकार थी। केबिन तक पहुंचने के रास्ते में जो भी स्टाफ मिलता बॉस के रुतबे को नमस्कार करता और वह नमस्कार छन-छनकर आसावी के चश्मे पर चिपक रहा था। विजिटिंग कार्ड की तरह मुस्कुराहट बांटते हुए वह बॉस के चेंबर में उनकी कुर्सी के सामने थी.... चश्मा टेबल पर था। बातें होती रहीं..... कुछ ऑफिस की..... कुछ अपनी। बातें और भी हो सकती थीं यदि रंजना बीच में न आती। रंजना सक्सेना से थोड़ी-सी सीनियर थी। आसावरी और इस बात की थोड़ी-सी ही खुशी थी उसे बाकी खुशियों को रंजना की चालाकियों ने निगल लिया था। सच मानें तो उसके लिए इस कहानी की विलेन रंजनाह ोथ ी।ख ैर,अ भीए कअ ौपचारिक नमस्कार आसावरी को अपनी मुस्कुराहट में मिलाकर रंजना दे चुकी थी और उसे वह मुस्कुराते हुए ले भी चुकी थी। इस लेन-देन का बॉस ने भी मजा लिया।

यह था कहानी का एक दृश्य। जिस तरह हर आदमी की अपनी एक कहानी होती है, उस कहानी में हजारों पात्र जुड़े होते हैं, ठीक उसी तरह इन तीनों के अलावा भी इनकी जिंदगी में पात्रों की और कहानियों की कोई कमी नहीं थी। आसावरी के लिए अपनी पत्रिका 'पावर गेम' के ऑफिस की कहानी उसके अंदर बिना लिफ्ट की एक बिल्डिंग बना चुकी थी, जिसके अंतिम माले पर वह रोज चढ़ती – उतरती थी। उसका बॉस यानी पत्रिका का प्रधान संपादक निरंजन कपूर, वह खुद सहायक संपादक और उप-संपादक रंजना सक्सेना.... इसके अलावा भी ऑफिस स्टॉफ से भरा था लेकिन आसावरी का दिल न किसी से भरा और न किसी के लिए खाली हुआ।

पत्रकारिता के क्षेत्र में जाना-पहचाना नाम। हिन्दी आउटलुक से सम्बद्ध। देश-विदेश मेंक ईब ारप त्रकारोंके स ाथ ि मशनप र। हिन्दी कहानियों के क्षेत्र में कदम रख दिया है। हंस, इण्डिया टुडे में कहानियाँ प्रकाशित। 'दो पन्ने की औरत' निकट के लिए लिखी गई ताज़ा कहानी है।

संपर्क –
A.B.- 10 Safdarjang Enclave,
New Delhi-110029.
Mobile-9818246059

'इस बार तो आप धमाल कर रही हैं..... कवर स्टोरी भी चेंज हो गई है।'

'हर बार तो आप ही छाई रहती हैं.....'

'अरे किस बात का ताना..... आपने तो पहले से इतना पैर पसार रखा है कि मेरी चादर हमेशा ही छोटी पड़ जाती है।'

'अरे काहे का पैर और काहे की चादर.....'

'आप तो पहले से हैं, आपका ही पैर और आपकी ही चादर..... मैं तो दो पन्ने के लिए लिखती हूं। मेरी कई अच्छी-अच्छी स्टोरी पेंडिंग हैं और आप हैं कि धड़ाधड़ स्टोरी दिए जा रही हैं।'

'आसावरी जी.....वो तो बॉस जानें और उनका काम जाने, निरंजन जी के मूड का कोई क्या कहे.....'

'मोहतरमा, क्या आप बताएंगी कि बॉस का मूड बनता कैसे है ?'

रंजना और आसावरी की आंखें मिलीं और दोनों हंसने लगे। एक की हंसी विशेष अर्थ में और दूसरे की अर्थहीन।

अगल-बगल में था दोनों का केबिन। बिना किसी दीवार जैसी चीज़ के। दोनों के चेहरे दिन भर में कई बार टकराते। दोनों भी टकरातीं। इस टकराहट कीअ ावाजप ूरेअ ॉफिसक ोक भी-कभी सुनाई भी देती। अपनी सुविधानुसार चरित्र की परिभाषा गढ़ने वाले मर्दों के बीच रहने और काम करने की अभ्यस्त दोनों ने अपने-अपने हिसाब से नज़रें गढ़ ली थी। आसावरी जो खेल श्रम और प्रतिभा से जीतना चाहती थी रंजना ने उसके लिए जीत का शॉर्टकट तलाश लिया था।

रंजना जीत रही थी-लगातार!

आसावरी हार रही थी-लगातार!

'अच्छा चलती हूं' रंजना ने आसावरी का ध्यान तोड़ा। वह अपने कंप्यूटर स्क्रीन पर लगी हुई थी, उसे इतना भी ध्यान नहीं रहा कि बड़े ध्यान से रंजना उसे पढ़ रही थी।

'ओ -के-बाय!' आसावरी ने लंबी सांस खींची-'मुझे तो अभी देरी लगेगी।'

रंजना जा चुकी थी। अपने लेखन में व्यस्त सुभद्रा कुर्सी पर पीठ सीधी करते हुए औरत और औरत होने के बारे में सोचती है..... और धीमे-धीमे रंजना को गालियां बकती है। अपना काम निबटाकर वह निरंजन के केबिन में थी.... चश्मा टेबल पर था।

'बॉस, मेरी उत्तराखंड वाली स्टोरी का क्या कर रहे हैं आप ? तीन महीने से दबाकर रखी है। हर बार कट जाती है। आपम ेरेस ाथह ीए ेसाव योंक रतेह ैं? ' बात मज़ाक के लहजे में कही गई थी, जिसमें थोड़ी गंभीरता, थोड़ी मासूमियत का रंग घुला था।

निरंजन ने अपनी आंखें आसावरी पर टिका दी।

आसावरी को लगा, कहीं बॉस को बुरा तो नहीं लग रहा। उसने अपनी आवाज में शिकायत और गंभीरता का तत्व कम किया और अपने लहजे में मासूमियत और इसरार का गाढ़ा रंग घोल दिया – 'आप मेरा ज़रा भी ख्याल नहीं रखते।'

'आसावरी जी, हम आप ही का ख्याल रखते हैं। आप तो सब कुछ जानते हुए बात को कहां से कहां ले जाती हैं। अरे देखा है मैंने, इस बार भी आपके 'बॉलीवुड स्पेशल' स्टोरी पर ढेर सारे पत्र आए हैं।'

'बहलाइएम तब ॉस'इ सब ारच ेहरे की दूरी आसावरी ने घटा दी थी। ए.सी. में भी न जाने कहां से निरंजन ने वह गंध महसूस की। टेबल पर झुकी हुई चश्मा उतारकर सामने बैठी थी आसावरी। वह एक आदमी, एक बॉस, एक मर्द और एक संपादक यानी चारों को अलग-अलग हैंडिल करना जानती थी। मगर जब से स्साली यह मोटी चमड़ी वाली आई है, बॉस के सामने उसका कोई सिक्कान हींच लप ाता ास ारेद ावख ाली जा रहे हैं।

'मेरी प्रतिभा को रोज-रोज परीक्षाओं से गुज़रना होगा ?' उसे लगा यह उसकी नहीं किसी और स्त्री के गले से निकल रही आवाज है। वह रिरिया रही है ?

'अरे, आप तो सीरियस हो गई। हा.....हा.....हा.....!'

बिना मतलब की हंसी आसावरी पसंद नहीं, लेकिन चूंकि यह बॉस की हंसी थी सो वह भी हंस रही थी।

'आज शाम क्लब में मिलें, बहुत दिन हो गए साथ ड्रिंक लिए.....' यह बॉस का प्रस्ताव था।

'नहीं सर, आज नहीं .....फिर कभी

'अरे हां, आज तो मुझे भी एक पार्टी में जाना है।'

अपने बैग के साथ निरंजन कपूर उठ चुके थे। दोनों ऑफिस से बाहर निकले।

'अरे आसावरी जी, आप साथ होती हैं तो लिफ्ट में जाने का मजा कहां है .....।

चलिए सीढ़ियों से। यू नो .....सीढ़ियां चढ़ते-उतरते एक खास अनुभव होता है।'

'जी, मुझे भी होता है।'

दोनो की आंखें मिलीं। इस बार बिना मतलब आसावरी ने ठहाका लगाया। निरंजन कपूर को भी अच्छा लग रहा था। उसकी नजरें वहीं थीं, जहां होनी चाहिए।

आसावरी अपना तीसरा पैग लगा चुकी थी। अन्य टेबल पर भी पत्रकारों की भीड़ लगी हुई थी। लेकिन उसके साथ टेबल पर 'पावर गेम' का कार्यकारी संपादक मिलाप चतुर्वेदी था। छोटा बॉस। कभी साथी..... कभी बॉस.... कभी पूरा

का पूरा मर्द...... कभी कुछ नहीं, अभी ड्रिंक पार्टनर, जिससे खुमारी चढ़ते ही दिल की बात की जा सके।

'मालूम है, वो साली नकली है।' तीसरे पेग के खुमार के बाद आसावरी के दिल की बात जुबां पर आ गई।

'अच्छा,र ंजनाक ाक ोईड बलर ोल भी है ?' मिलाप ने उसे छेड़ा।

'देखो यार मिलाप जी, पकाओ मत। आप जानते हो मैं क्या कह रही हूं। आप साले मर्द लोग न.... एक जैसे होते हो। आप लोगों के लिए किसी भी परिभाषा में औरत एक देह भर होती है।'

वह शुरू हो चुकी थी। चश्मा तो पहले ही बैग में डाल चुकी थी। अब वह पूरी की पूरी लड़की थी, जो एक मर्द से बात कर रही थी..... नशे में बहक कर नहीं बल्कि सदियों का नशा तोड़ने की कोशिश में।

'आप भी तो उसी फुलझड़ी के साथ हो लेते हो समय आने पर। उसका नकली चेहरा आपको भी अच्छा लगता है।'

'आप भी तो औरत को मर्द के थर्मामीटर से मापना चाहती हैं।' मिलाप ने 'थर्मामीटर' शब्द आराम से कहा था लेकिनअ ासावरीन े उ समेंम र्दानीश ारारत महसूस की। दोनों दूसरी बातों में आ चुके थे। पेगों की संख्या भी बढ़ रही थी। विषय बदल रहे थे। आसारवरी ने बैग से चश्मा निकाला। अब वो पत्रकार थी, एक औरत भी, जिसका एक घर भी था।

❑

आज प्रोडक्शन का दिन था। ऑफिस में अफरा-तफरी। सब अपने-अपने काम में व्यस्त। रचनात्मक व्यस्तता में मस्ती सिगरेट के धुएं की तरह निकल रही थी। आसावरी आज अपने दो पन्ने की स्टोरी को डिजायनर से बनवा चुकी थी। वह खुश थी अपने घर कभी न लौटने लायक बन चुकी लड़की की कहानी लिखकर। लेकिन खुशी अचानक दिमाग के पिछली अलमारी में शिफ्ट होने लगी। उसकी जानी पहचानी हमराज उदासी उसके साथ थी। आखिर उदासी भी क्या करे ? आसावरी ने उसे कभी अपनेद ोप न्नेम ेंज गहन हींद ी ाउ सकी आंखेअ चानकट िकग ईर ंजनाप र ावह अपने काम में व्यस्त थी। उसकी काजल भरी आंखें स्क्रीन पर टिकी थीं। उंगलियां रह-रहकर की-बोर्ड पर आगे-पीछे हो रही थीं। इधर आसावरी गौर से देख रही थी। असली और नकली के बीच की रंजना को। एक गंभीर वेश-भूषा वाली झोलू पत्रकार बॉस के सामने अचानक औरत का नक्शा कैसे बन जाती है, जिसमें औरत का पूरा पता साफ-साफ होता है। आज वह रंजना को आर-पार देखना चाहती थी। उससे उम्र में छोटी, उससे देखने में कम सुंदर।

आखिर उदासी भी क्या करे ? आसावरी ने उसे कभी अपने दो पन्ने में जगह नहीं दी। उसकी आंखे अचानक टिक गई रंजना पर। वह अपने काम में व्यस्त थी। उसकी काजल भरी आंखें स्क्रीन पर टिकी थीं।

'साल्ला, सीढ़िया मैं चढ़ूं ...... चश्मा मैं उतारूं....... बोल्ड औरत होने की छवि मेरी और मजा लूटे ये। कमाल है..... पता नहीं .....हूं!' उसके बाद लगातार अनाप-शनाप सोचते हुए आसावरी ने भीड़ का सामना किया।

❑

आसावरी अकेले में बैठे घंटों सोचतीर हती- ' आखिरउ सल ड़कीम ें क्या है, जिसने मुझे अपने वजूद को लेकरअ ाशंका,ड रअ ौरअ सुरक्षास े भ र दिया है ?' ...... क्या वह भी एक बार उन रास्तों पर चलकर देखे जिस रास्ते रंजना जा रही है....... और एक के बाद एक उपलब्धियां धड़ाधड़ उसके कदम चूम रहे हैं..... दफ्तर में बैठी वह उन रास्तों के बारे में सोचती रही और तमाम पुरानी बातें रील की तरह घूमने लगीं। पुराने ऑफिस में एक क्षेत्रीय अखबार में वह एक उबाऊ शाम थी। बॉस धड़धड़ाते हुए अंदर घुसे। उसकी तरफ देखकर मुस्कुराए और पास कुर्सी खींचकर बैठ गए। आसावरी ने देखा उनकी तरफ। आमने-सामने बैठे थे दोनों।

बॉसन े अ पनीह थेलीउ सकीज ांघों पर फेरी – 'एक ऑफिशियल टूर बन रहाह ैह ैदराबादक ा,त ुमकोभ ेजनाच ाह रहा हूं। जाओगी ?' टूर के नाम पर हमेशा आसावरी की लार टपकती है। इस बार भी आंखें चमकीं और बुझ गई। हथेली जांघों पर कस रही थीं और नाखून धंस रहे थे।

हैदराबाद की मीनारें धड़ से गिरीं। झटके से वह उठी और कहा – 'मुझे कहीं नहीं जाना। आप संजय को भेज दें!

इस इन्कार के बाद वह कई दिनों तक ऑफिस में बॉस की उपेक्षा झेलती रही। मगर वह खुश थी कि उसकी जांघें सही-सलामत थीं।

इस नए दफ्तर में बॉस ने कोई संकेत दिया नहीं। क्या वह अपनी जांघें उन्हें खुद ऑफर करे। क्या करे ? उसने गाड़ी निकाली और इंडिया गेट से जनपथ और कनॉट प्लेस तक कई चक्कर लगाए मगर दिलो दिमाग में उधेड़बुन बरकरार रही। ऑफिस लौटी तो फिल्म समीक्षक पुनीत वर्मा इंतजार करते मिले।

आसावरी फट पड़ी – 'बहुत हो गया। मुझे भी कोई उपाय बताइए...... आप मर्द हैं। कैसे पटाते हैं। मैं ऐसा क्या करूं कि बॉस मुझे फेवर करने लगें ?'

वे मुस्कराए। दोनों हाथ आडवाणी

की तर्ज पर मलते हुए उचके – 'आप अब नहीं कर सकतीं आसावरी जी। देर हो गई है। आपके और रंजना के बीच उम्र का फासला है। साइज की तरह उम्र भी मायने रखती है। आप मुकाबले में मत उतरिए।'

आसावरी के पैरों तले ज़मीन खिसक गई!

रास्ते में एक बड़ा पत्थर अचानक आ गिरा।

उसने बैग उठाया और दफ्तर की सीढ़ियां उतरने लगी। यह उतरन अपनी नजरों से उतर जाने जैसा था जिसमें सालों लगे।

❑

आसावरी कभी-कभी मन को समझाती कि हो सकता है, रंजना सचमुच प्रतिभाशाली हो, जेनुइन हो, समझदार हो। थोड़ी देर ठीक रहती, रंजना के प्रति सहृदय हो उठती। उसे चॉकलेट खाने को देती। उसकी प्रशंसक हो उठती। मगर जैसे ही बॉस उसकी स्टोरी की तारीफ करते, आसावरी बौखला उठती। रंजना से बड़ा शत्रु कोई नजर नहीं आता। फोन उठाती और अपनी किसी दोस्त को बताती। जोर-जोर से बात करती ताकि रंजना सुन ले और उसका मूड खराब हो जाए। इसमें आसावरी को आंनद आता। वह फोन पर कहती, स्साली पता नहीं कितने घर तोड़ेगी। रहती किसी के साथ है, घूमती किसी के साथ है। कोई दीन ईमान नहीं इसका मतलब के ढेरो यार हैं इसके। सबको धोखे में रखती है यहां भी नरक कर रखा है!'

रंजना को सब सुनाई पड़ता और कनखियों से आसावरी उसके तमतमाए चेहरे को देखती और आनंदित होती। यह आनंद अवसाद में बदल जाता जब अगले दिन बॉस किसी बहाने आसावरी की क्लास लगा देते। चपरासी भी गलती करे तोड ंटअ ासावरीक ो ाक हींक ोईघ ाटना घटे तो उसका जिम्मेवार आसावरी को मान लिया जाता। यह बात धीरे-धीरे आसावरी समेत दफ्तर के सभी साथी समझने लगे थे।

आज जो आसावरी ने देखा, वह सब को दिखाना चाहती थी। ऑफिस को सुनाई देने वाली आवाज आज फुसफुसाहट में बदल गई थी। बगल में काम कर रही रंजना को पहले आसावरी ने ही टोका।

'क्या मैडम, क्या हो रहा था बॉस के केबिन में ?'

कुछ नहीं कहा रंजना ने। कहती भी क्या ? जानबूझ कर आसावरी आज मोटी चमड़ी में सूई गड़ाना चाह रही थी ? मोटी चमड़ी को अपनी ताकत मानती थी रंजना। इसी ताकत का इस्तेमाल वह आसावरी के लिए करती थी। ऑफिस में उठने वाली तेज आवाज भी उसकी मोटी चमड़ी सोख लेती थी। उसका चेहरा थोड़ा सख्त जरूर हुआ, लेकिन आसावरी कास ामनाउ सकीम ोटीच मड़ीक रर ही थी और आसावरी उसकी मोटी चमड़ी के पार जाकर उसको औरत होने का मतलब समझाना चाहती थी। रंजना की ओढ़ी हुई सादगी की चमक खुरच देना चाहती थी वह।

'क्या हुआ, बोल क्यूं नहीं रही हो ?'

आक्रामक रुख देख कर इस बार संभल नहीं पायी रंजना – 'कहना क्या चाहती हैं आप ?'

'तुम्हारे नहीं दिखने वाली चालाकियों के बारे में कहना चाहती हूँ और हां, तुम्हारी मोटी चमड़ी बहुत ज्यादा दिनों तक सच्चाई को नहीं पचा पाएगी।'

रंजना अपने काम में लग गई थी, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। आसावरी भी मोटी चमड़ी की हकीकत से लड़ते-लड़ते अपने दो पन्ने में घुसने के लिये तैयार हो रही थी। शब्दों की चादर ओढ़ कर जिंदगी के चार हिस्सों में बिछी आसावरी ने कंप्यूटर स्क्रीन पर ही अपना एक कोना ढूंढा, जहां अपने को ठीक से ओढ़ने-बिछाने में उसे किसी रंजना का सामना न करना पड़े। उसने अपना ब्लॉग बनाया, जहां उसे हंसने-रोने की पूरी आजादी थी।

❑

सीढ़ियों पर निरंजन कपूर मिले, उसके बाद वह बॉस के केबिन में थी..... चश्मा टेबल पर था। यह और दिन की तरह रूटीन वर्क की तरह होता अगर आज नई खबर के साथ दोनों आमने-सामने नहीं होते। दोनों एक-दूसरे का चेहरा ओढ़कर एक दूसरे को देख रहे थे। आसावरी और निरंजन टेबल के आमने-सामने इस तरह से बैठे थे कि दोनों का हाथ एक दूसरे से हल्का सटा हुआ था।

'आपकी याद तो बहुत आएगी आसावरी जी। आप भी चलिए हमारे साथ।'

'फिर यादों का क्या होगा.... कुछ चीज़ेंय ादोंम ेंह ीम हफूज़र हेंत ोअ च्छा है।'

बॉस के चेहरे की तिलमिलाहट देखकर आसावरी ने महसूस किया, उसकाा नशानास हील गा।....' लगताहै अब फिर से पुराने दिन लौट आएंगे!' इसी बीच मिलाप चतुर्वेदी केबिन में दाखिल हुए।

'नमस्ते सर, हैलो आसावरी जी.....'

मिलाप के चेहरे पर असली रौनक और नकली उदासी की जबदस्त पुताई थी।

निरंजन और आसावरी अपनी कुर्सियों पर सीधे बैठ गए थे..... ठीक से संभलना अभी बाकी था।

निरंजन कपूर अब मिलाप से

वह नए बॉस के साथ उसी पुराने केबिन में नई उम्मीदों के साथ जा रही थी। आज सामने 'पावर गेम' के नए प्रधान संपादक मिलाप चतुर्वेदी के सामने थी। उसका चश्मा आंखों में ही था। तभी केबिन में एक खूबसूरत लड़की दाखिल होती है।

मुखातिब थे – 'मिलाप जी आपको बधाईह ो,अ ब' पावरग ेम'अ ापकेह ाथ में है।'

'सर शुक्रिया, आपको भी बधाई हो..... देश के इतने बड़े मीडिया हाउस को आपकी सेवाएं मिलने जा रही हैं।'

बात चलते-चलते ऑफिस की यादों और हंसी-ठहाकों का दौर शुरू हुआ है। एक अलग मस्ती छा रही थी आसावरी पर भी। इसी बीच रंजना भी केबिन में पहुंची। आज आसावरी ने पहले थोड़ी मुस्कुराहट और थोड़ी शरारत के साथ अपना नमस्कार रंजना को दिया। दोनों की आंखें मिलीं। रंजना ने नमस्कार भी बड़ी मीठी लगने वाली मुस्कुराहट के साथ लिया और निरंजन के साथ मिलाप ने भी उस मुस्कुराहट का भरपूर मजा लिया।

मिलाप चतुर्वेदी ने रंजना के अभिवादनक ाज वाबभ ाब धाईस ेि दया – 'अरे रंजना जी, आपको ढेर सारी बधाइयाँ। आप भी बॉस के साथ जा रही हैं ?

आसावरी ने राहत की सांस ली – 'चलो, जान तो छूटी मोटी चमड़ी से।'

❑

आज आसावरी के सामने पुरानी सीढ़ियों पर नया बॉस था। आज उसने अपना चश्मा नहीं उतारा था। वह नए बॉस के साथ उसी पुराने केबिन में नई उम्मीदों के साथ जा रही थी। आज सामने 'पावर गेम' के नए प्रधान संपादक मिलाप चतुर्वेदी के सामने थी। उसका चश्मा आंखों में ही था। तभी केबिन में एक खूबसूरत लड़की दाखिल होती है।

मिलाप परिचय करवाते हैं – 'आसावरी जी, आप है संजना शर्मा। आपकी नई सहयोगी। अब हम लोग पत्रिका को मिल कर बेहतर बनाएंगे'

आसावरी ने ग़ौर से देखा अपनी नई सहयोगी को, जो रंजना की जगह पर आयी थी।

'अरे! यह तो वही है!' आसावरी के होश उड़ गए। मोटी चमड़ी की गंध बॉस केके बिनम ेंफै लर हीथ ी....ब ॉसअ ैर मोटी चमड़ी वाली लड़की की आंखें अर्थपूर्ण ढंग से मिली.... दोनों मुस्करा रहे थे..... और बदहवास।

आसावरी को लगा, मानो उसका पांव फिसला हो और वह किसी अंधेरे, तिलिस्मी कुएं में जा गिरी हो! ◆

❑

■ **कहानी** – इला प्रसाद

तूफ़ान की डायरी

यह सच सुबह खुला, जब उसने अपने घर का पीछे का फेंस गिरा देखा और पड़ोसी के पेड़ का आधा हिस्सा उसके घर की छत पर। तब तक वह बुरी तरह थक चुकी थी। सिर में तेज़ दर्द था। पूरे शहर की बिजली, जाने कब तक के लिए गुल, हो चुकी थी और आसमान अब भी बरस रहा था।

जन्म : 21 जून को झारखंड की राजधानी रांची में।

शिक्षा : पी एच डी (भौतिकी)

लेखन : कविता एवं कहानी लेखन के अतिरिक्त विज्ञान सम्बन्धी लेखों का हिन्दी में अनुवाद और स्वतंत्र लेखन।

प्रकाशित कृतियां : ''धूप का टुकड़ा'' (कविता संग्रह) एवं ''इस कहानी का अंत नहीं'' (कहानी-संग्रह)।

रुचियाँ : योग, रेकी, बागवानी, पर्यटन एवं पुस्तकें पढ़ना।

व्यवसाय : अध्यापन।

सम्पर्क –

ILA PRASAD
12934, MEADOW RUN
HOUSTON, TX-77066
USA
E mail :
ila_ prasad1@yahoo.com

''गुस्ताव गो अवे
टीना डजण्ट लिव हियर।''

(गुस्ताव, चले जाओ। टीना यहां नहीं रहती)

वह नहीं जानती, टीना कौन है। मरीना बीच पर बने उसके घर का दरवाजा जब टी.वी. स्क्रीन पर उभरा था तो उसके ऊपर लकड़ी ठुंकी हुई थी और लिखा था यह वाक्य, जिसे पढ़ कर वह आगामी खतरे को आधी-आधूरी महसूसती हँस पड़ी थी। उस समय गुस्ताव के आने की चेतावनी हर टी.वी. चैनल पर थी।

मन में उभरा था एक गोल-मटोल बच्ची का चेहरा, जो बड़े बेमन से घर छोड़कर जा रही होगी और उसने गुस्से में भर कर अपनी माँ से कहा होगा, ''क्यों आ रहा है गुस्ताव ? उसी की वजह से तो हमें जाना पड़ रहा है न ? लिख दो, मैं यहाँ नहीं रहती। वापस जाए।''

या फिर वह कोई नवयुवती होगी जिसकी विनोदप्रियता जबरदस्त होगी। अमरीकी मुसीबत में भी मज़ाक कर लेते हैं! उसकी हँसी उस शाम से गायब है। वह हँसना क्या आखिरी बार का था ?

पूरी रात वह जागती रही। रात भर लिविंग रूम की खिड़की के शीशे से आँखें टिकाए प्रकृति का ताण्डव नृत्य देखती रही। पहली बार जाना कि चक्रवाती तूफ़ान की आवाज कितनी तेज़ होती है! चट-चट पेड़ों की डालियाँ, पत्ते टूट कर तेज़ हवा में सब ओर उड़ते रहे। मैदानों में, छतों पर गिरते रहे। बारिश की बूँदें चाँदनी रात में हवा के साथ मिल कर सब ओर यूँ नाचतीं ज्यों आसमान में एक विशाल स्प्रिंकलर लगा हो। इन्हीं के बीच रह-रह कर आती तेज़ आवाजों से वह चौंकती। समझने में असमर्थ कि सिर्फ डालियाँ ही नहीं, पेड़ के पेड़ धराशायी हो रहे हैं। सिर्फ़ धराशायी ही नहीं वरन उनमें से कई तने के बीचों बीच से चार टुकड़ों में फट कर चार दिशाओं में गिर रहे हैं। यह सच सुबह खुला, जब उसने अपने घर का पीछे का फेंस गिरा देखा और पड़ोसी के पेड़ का आधा हिस्सा उसके घर की छत पर। तब तक वह बुरी तरहथ कच ुकीथ ी।ि सरम ेंत ेज़द र्दथ ा। पूरे शहर की बिजली, जाने कब तक के लिए गुल, हो चुकी थी और आसमान अब भी बरस रहा था।

इस समुद्री तूफ़ान को उन्होंने ''गुस्ताव'' नाम दिया था। गुस्ताव, जिसे टीना ने आने से मना किया था।

वह आया था, तब भी। पूरे चौबीस घंटे शहर में रुका था और सब ओर तबाही मचा कर अगले शहर को निकल गया था। शायद टीना को ढूंढता हुआ .....।

एक हज़ार पेड़ गिरे थे। पेड़ों के साथ ट्रैफ़िक सिगनल, बिजली के तार।

शहर के समुद्री इलाके में बाढ़ थी।

वह हिस्सा एक द्वीप में रातों-रात तबदील हो चुका था और जिन्होंने सरकारी आदेश की अवहेलना कर अपने घर नहीं छोड़े थे, वे अब उस द्वीप पर भूखे प्यासे रहने के लिए मजबूर थे। उस हिस्से में संचार व्यवस्था पूरी तरह ठप्प हो चुकी थी।

चौबीस घंटों में शहर का नक्शा पूरी तरह बदल चुका था।

उसके फ्रिज में पुलाव और सब्जी थी जो सिर्फ़ आज के लिए काफ़ी थी। एक पावरोटी, जो कल खायी जा सकती है।

स्टोर में थोड़ा-सा चारकोल है जो आंगन में रखे बारबाक्यू में तब जलाया जा सकता है, जब बारिश थमे। वह अधिक से अधिक अगले एक दिन का खाना बनाने के लिए था। दूकानें बन्द थीं। सड़क पर रात का कर्फ़्यू।

वह सचमुच अनुभवहीन है! नीरज भी।

उसे कम से कम थोड़ा सा लकड़ी का कोयला और खरीदना था कि कम से कम अगले एक सप्ताह तक खाना बन सके। कल के बाद वह क्या खाने खिलाने वालीहै ,उ सेन हींप ता।म ोमबत्तियाँ ार में काफ़ी हैं लेकिन उनसे बस थोड़ी रोशनी हो सकती है, उन पर खाना नहीं बनाया जा सकता।

फ्रिज में रखा दूध कल के बाद फ़ेंकना पड़ेगा। आइस्क्रीम और बाकी की चीजें भी।

दिमागल गातारा हसाबक रर हाहै। वह अगले दो सप्ताह का समय कैसे निकालेगी ? सब कह रहे हैं कि बिजली आने में कम से कम उतना वक्त तो लगेगा ही।

थके मन और शरीर से दिवा उठी और सोफ़े पर जा लेटी। फिर उसने सोचा कि वह कम से कम इतनी खुशनसीब तो है कि उस द्वीप पर नहीं है। कल रात तक का खाना उसके पास है। सड़क पर बाढ़ कीस्थितन हींब नी।न ल में पानी आ रहा है और सहसा उतर आई ठंढ की वजह से वह शायद आज रात सो भी सकेगी।

''टर्टल बीच'' पर तो इससे भी बुरी स्थिति थी। हवा कारों को जमीन से दो फुट ऊपर उठाकर पटक रही थी।'' उसकी मित्र लता, जिसने हाल ही में इस शहर में शिफ़्ट किया था, फ़ोन पर बतला रही थी।

''बाप रे! तब तो सारी कारें ''टोटल'' हो गई होंगी ?''

''कई लोगों की हो गई। हमारी कार गराज में थी। बुरी तरह डैमेज हुई थी। टोटल नहीं हुई।''

''अच्छा।''

''बाढ़ की वजह से पानी भी बहुत कम आ रहा था। कुछ हिस्सों में एक महीने तक पावर नहीं आया।''

''पच्चीस साल पहले जब ''अलीशिया'' आई थी तब उससे बुरी स्थिति थी यहाँ। हाँ, इतने पेड़ नहीं गिरे थे।''

''लोग चर्चा कर रहे थे। मैंने सुना।''

''ओह!''

''पहले मैं सोचती थी कि अमेरिका में कभी पावर नहीं जाता।''

''हाँ, मैं भी। लेकिन ऐसा नहीं है। जहाँ बर्फ़ के तूफ़ान आते हैं, वहाँ भी पावर जाता है।''

''हाँ, अब जानती हूँ।''

फिर उनकी बात खत्म हो गई। ऐसे विषयों पर कोई कितनी बातें करे और कब तक ? यह कोई बातें करने का वक्त भी नहीं। तूफ़ान सिर से गुजर रहा है और बाहर आने की अवधि अनिश्चित है।

''मुझे तुम्हारा यह अपार्टमेन्ट अच्छा लगता है। मैं इसे खरीदना चाहती हूँ।'' ब्रेण्डा ने कहा था।

''अगर तुम दस हजार का डाउन पेमेन्ट दे सकती हो तो ''रेण्ट टू ओन'' कर सकती हो।'' - नीरज ने सुझाया था। तब, जब पूरा देश आर्थिक मंदी के दौर से गुजर रहा है, घर बिक नहीं रहे। कोई घर खरीदना चाहता है। यह बस तीन महीने पहले की बात है। वह सुनकर खुश हुई थी। नीरज का अपर्टमेण्ट किसी को इतना अच्छा लगा।

उस अपार्टमेण्ट की छत गिर गई है। सिर्फ़ उसी की नहीं, और बहुत सारे अपार्टमेण्टस की। एक मंजिले घरों की भी गिरी होगी। लेकिन आदमी अपने दुख से पहले रोता है। दिवा का दिल डूब गया जब सुबह-सुबह जेरेमी का फ़ोन आया।

''खैरियत है कि ब्रेण्डा जेरेमी के साथ चली गई थी, पहले ही।''

''अच्छा! आश्चर्य है।''

जेरेमी, ब्रेण्डा का ब्वायफ्रेन्ड है। ब्रेण्डा चाहे उसकी जितनी मदद ले ले, उसके साथ रहना नहीं चाहती।

''हाँ, वह जाना नहीं चाहती थी। जेरेमी बारह बजे रात तक उसके यहाँ बैठाथ ा।त बह वाएँब हुतत ेजह ोच ुकी थीं। बारिश भी शुरू हो रही थी। वह समझा-बुझा कर उसे उसके बच्चों के साथ वहाँ से निकाल ले गया।''

''भगवान का लाख-लाख शुक्र है, वरना छत कहीं उसके या बच्चों के ऊपर गिरी होती। वह क्या जेरेमी के घर पर है ?''

''नहीं, जेरेमी ने अपने कजिन के खाली पड़े घर में उसे टिका दिया है। उसका भाई अभी स्पेन गया हुआ है।''

''चलो, अच्छा हुआ।''

आज तूफ़ान का दूसरा दिन है!

तूफ़ान का चौथा दिन

नीरज पूरे शहर के सारे स्टोर देख आया। कहीं कुछ भी खुला नहीं। सारे स्टोर बन्द हैं। घर पर खाने को कुछ नहीं है। कोयला खत्म हो चुका है। सुबह बचा हुआ ब्रेड खा लिया गया था। आगे क्या? कल का खाना निधि के घर खाया। उसकेप ासग ैसक ाच ूल्हाह ै ाउ नद ोनों कोइ तनीअ क्लक योंन हींअ ईई कग ैस का चूल्हा रखें!

हर दूसरे घर के आगे एक पेड़ गिरा मिला। सड़क किनारे भी। ट्रैफ़िक सिगनल हवा में झूल रहे हैं। लोग हर सिगनल पर रुक कर आगे जा रहे हैं। जिन्दगी की रफ़्तार पर ब्रेक लग गया है जैसे। घिसट रहा है सबकुछ, बस।

एक ''क्रोगर'' खुला मिला। जेनरेटर चल रहा था वहाँ। कुछ बुलियन रोल और पीनट बटर मिल गया। एक दिन और बीत गया।

बिजली गायब है।

बच्चे खुश हैं। निधि ने बतलाया। स्कूल में छुट्टी जो है। लेकिन दिन भर की खुशी। रात होते ही चिल्ल-पों।

रेडियो परलगातार तूफ़ान के बाद की सूचनाएँ आ रही हैं।

''सरकारी सहयता कोष ने कई सेण्टर खोले हैं। मैं देख कर आता हूँ, वहाँ क्या मिल रहा है।''

''बहुत धांधली है। चर्च को बतलाया गया था कि रात आठ बजे तक सेंटर खुला रहेगा। रेडियो पर भी यही सूचना थी। छह बजे अचानक से बन्द करने के आदेश आ गाए। उनका कहना है, हमें अनुभव नहीं है, इतने लोगों से एक साथ डील करने का ादस हजार लोग आ गए थे, एक साथ। बन्द कर दिया सेंटर छह बजे ही।''

राज ढले नीरज वापस लौटा। एम आ ई (मील्स रेडी टू ईट) के कई डब्बे। पानी की बोतलें और बर्फ़।

''बहुत धांधली है। चर्च को बतलाया गया था कि रात आठ बजे तक सेंटर खुला रहेगा। रेडियो पर भी यही सूचना थी। छह बजे अचानक से बन्द करने के आदेश आ गाए। उनका कहना है, हमें अनुभव नहीं है, इतने लोगों से एक साथ डील करने का। दस हजार लोग आ गए थे, एक साथ। बन्द कर दिया सेंटर छह बजे ही।''

''हाँ, तूफ़ान तो रोज-रोज आने चाहिए। इनको अनुभव होगा। ''कैटरीना'' से कैसे निबटा था? तब अनुभव था?'' वह तिक्त स्वर में बोली।

''मैंनेप ार्किंगए रियाम ेंअ पनीब ारी के इंतजार में रुके कई लोगों को पानी और डब्बे दिए जो मैंने लिए थे।''

''अच्छा किया।''

''इन डब्बों में क्या है ?''

''खोलो देखो।''

''सारा कुछ नान वेज। मैं दूध ले सकती हूँ बस!''

तूफ़ान का पाँचवां दिन

आज पाँचवे दिन से सड़क पर एनर्जी कम्पनी की गाड़ियाँ दौड़ लगाने लगीं हैं सायरन देती हुई। हटो हटो, हमें आगे जाने दो। बिजली ठीक करनी है शहर की।

सोयाह ुआश ाहरज ागर हाह ैध ीरे-धीरे। कुछ दूकानें भी खुल गईं। वे बहुत सारा चारकोल ले आए हैं। अब खाना बन सकता है। अंधेरे में भी जिया जा सकता है!

दरवाजे पर सांझ ढले दस्तक हुई तो नीरज ने जा कर देखा। पड़ोसन बेलिंडा के बच्चे दरवाजे पर खड़े थे। ''यू हैड लेफ़्ट यूअर कार ट्रंक ओप्न। वी क्लोज्ड इट।'' (तुमने अपनी कार का ट्रंक खुला छोड़ दिया था। हमने बंद कर दिया।)

वह सहसा कृतज्ञ हो आई।

परेशानियाँ, लगता है मस्तिष्क पर हावी होने लगी हैं।

''कुछ खाओगे?'' नीरज ने सोचा कुछ एम आर ई के डब्बे उन्हें दे दे।

''नो वी हैव एनफ़। वी हैव गैस बर्नर। मॉम इज कुकिंग। वी हैव जेनरेटर टू।'' (नहीं हमारे घर में पर्याप्त भोजन है। हमारे पास गैस बर्नर है। माँ खाना बना रही हैं। हमारे पास जेनरेटर भी है।)

लेकिन तब भी उनके घर जा कर खाना पकाना उसे सम्भव नहीं लगा। ठीक सामने का घर, लेकिन तब भी दूरियाँ बहुत हैं। आकर पका लो. अगर बेलिंडान ेक हाह ोतात ोठ ीकथ ा।ए ेसा तो हुआ नहीं। बच्चों का क्या। बच्चे तो बच्चे ठहरे!

दस दिन बाद

''दस दिन हो गए। कब आयेगी बिजली ?'' नीरज अब तक कई बार एनर्जी कम्पनी को फ़ोन कर चुका है। सूचना के अधिकार का उपयोग और क्या!

अपार्टमेण्ट में ब्रेण्डा का सारा सामान भीगा पड़ा है। फ़फूंद जमनी शुरू हो चुकी। गीले कारपेट को निकाला जा चुका।

लेकिन बस इतना ही। ब्रेन्डा बात करते ही रोने लगती है।

''तुम मुझे निकालना चाहते हो ? एक तो तूफ़ान ने मेरा बुरा हाल किया और तुम्हें अपार्टमेन्ट की छत ठीक करवाने की पड़ी है। मैं ''फ़ेमा'' के इन्स्पेक्शन के पहले कुछ नहीं हटानेवाली।''

''लेकिन... वहाँ फ़फ़ूँद जम रही है।''

''जमने दो।''

वह फ़िर से रोने लगती है।

दिवा टूटा हुआ घर देख आई। मलबे में तब्दील हुआ सारा कुछ। लौटकर बहुत रोई। पता नहीं, अपने लिए या ब्रेन्डा के लिए।

तूफ़ान का बारहवाँ दिन

आज चीनो का फ़ोन आया। अपार्टमेन्ट के ग्राउन्ड़ फ़्लोर पर वह है। उसने वह अपार्टमेन्ट तीन सप्ताह पहले खरीदाथ ा।अ बऊ परके अ पार्टमेन्टक ी छत गिरने से उसके घर भी काफ़ी पानी रिसा है। दीवारें भीगी हैं। वह जानना चाहता है कि नीरज कब काम शुरू करेगा।

ब्रेण्डा कुछ भी सुनने को तैयार नहीं।

आज जेरेमी को कजिन के वापस आने की सूचना मिली है। ब्रेण्डा जेरेमी के घर में दिन भर अपना सामान शिफ़्ट करती रही। कल से उसे काम पर जाना है। अस्पतालों में बिजली आ चुकी है। सड़कोंप रभ ीअ ैरक ईश ाापिंगम ालम ें भी।

वे शहर के उस हिस्से में एक अपार्टमेन्ट में चले गए हैं जहाँ बिजली आ चुकी है। ठंड के बाद फ़िर से गर्मी हो गई। दिवा की तबियत बहुत खराब हो गई थी।

कई लोग होटलों में चले गए हैं। गुस्ताव के मद्देनजर होटल टैक्स माफ़ हो गए हैं।

नीरज की सारी चिन्ता अब अपार्टमेण्ट है। इन्श्योरेन्स कम्पनी मुआयना कर गई लेकिन उनका हिसाब वास्तविक हिसाब से मेल नहीं खाता। तब भी उसने सबकुछ ठीक करवाया है। ब्रेण्डा कहीं और नहीं जाना चाहती थी। उसे अपने घर वापस लौटना है। उसी अपार्टमेण्ट में।

नीरज जुटा हुआ है।

तूफ़ान ने बहुतों के अहम तोड़े हैं। बहुत सारे भरम टूट गए।

जेब में भरे डालर किसी काम नहीं आए। अचानक से सामाजिकता नजर आई। वेरोनिका ने बहुत मदद की नीरज और दिवा की। वे अरसे से एक ही सबडिवीजन में रह रह थे और एक दूसरे को जानते तक न थे। वेरोनिका के घर बिजली पहले आई और दिवा उसकी मशीन में अपने कपड़े धो आई।

डोरोथी ने गर्म पानी दिया था। वे जेनरेटर ले आए थे।

नीरज की तो पुरानी आदत थी, लोगों को पूछ-पूछ कर सहायता करने की। भ ारतीयस ंस्कार ाउ सीक मम ेंत ो वेरोनिका से परिचय हो गया। सहायता मिल गई। मुसीबत इन्सान को जुड़ना सिखाती है!

ब्रेण्डा का बहुत सारा सामान अभी भी अपार्टमेण्ट में है। वह कब लौटेगी, उन्हें जानना है। जेरेमी भी इस मामले में मदद नहीं कर पा रहा अब।

नीरज कई बार उससे भी बात कर चुका ।व हय ूँभ ीज ेरेमीक ीक हाँस ुनती थी। जेरेमी तो कब से उससे शादी करना चाहता है। लेकिन अपनी इच्छा को मन में दबाए हुए है। जानता है ब्रेण्डा का दिल नहीं जीत पाया है वह अब तक। न उसके बच्चे ही उसे पसन्द करते हैं। विधुर जेरेमी के बच्चे चाहे ब्रेण्डा को स्वीकार लें। वह है भी खूबसूरत। आम अफ़्रीकी अमेरिकन से कम काली और सुन्दरन ाकन क्शव ाली ।श ायदइ सीलिए खुद पर इतना गुमान हो। जेरेमी भी सोचता होगा, इतनी सुन्दर कहाँ मिलेगी। शायद इसीलिए उसकी शर्तों पर उससे सहयोगक रताह ै ाल ेकिनए ेसेक बत क चलेगा?

आज तूफ़ान का सोलहवाँ दिन है। बाजार खुल गए। सड़कों पर स्ट्रीट लाइटें जलती हैं। ट्रैफ़िक सिगनल, कुछ को छोड़ कर काम करते हैं चीजों की कीमतें दुगनी-तिगुनी हो गईं। मरेगा गरीब और क्या!

नीरज और दिवा अपने सबडिवीजन के करीब से गुजरे तो मन हुआ कि घर तक जाकर कुछ चीजें और उठा लाएं। पता नहीं अभी और कितने दिन अपार्टमेंट में रहना लिखा है। दिवा की तबियत बिगड़ गई थी। अभी भी थका-टूटा मन है। शरीर से सारी उर्जा निचुड़ गई जैसे। इतने थोड़े दिनों में.....

''देखो, इस हिस्से में भी रोशनी आ गई!''

और इसी तरह देखते रुकते वह आगे बढ़ते रहे।

''स्ट्रीट लाइट सारी जल गई।''

''अरे, अपनी गली में भी!''

''बर्नार्डो की लाइट जल रही है।''

''उनका जेनरेटर है।''

''बैक यार्ड की लाइट देखो। अपने घर बिजली आ गई।''

नीरज ने घर के सामने कार पार्क कर दी। बिजली की फ़ुर्ती से वह घर की ओर बढ़ा और दरवाज़ा खोलकर घर में दाखिल हो गया। सारी लाइटें एक-एक कर जल उठीं। बिजली सचमुच आ गई थी! दिवा को लगा एक सौ वाट का बल्ब उसके अन्दर भी जल गया है। एकबारगी नई ऊर्जा शरीर में भर गई। अब वह सबकुछ कर सकती है!

महीना बीत गया। वे अपने घर वापस आ गए थे उसी रात। शहर अब भी गुस्ताव को भूला नहीं, लेकिन अपने काम में लग चुका है। इन्श्योरेन्स कम्पनियाँ पैसे चुका रही हैं। मरम्मत के बाद नए दिखते घर पुन: मुसकराने लगे हैं।

काउन्टी का ट्रक गलियों में भी घूमने लगा है- रोबोटिक आर्म वाली कई गाड़ियों के साथ घरों के सामने से गिरे हुए पेड़, पत्ते, डालियाँ, फेन्स के पिकेट पंजों में समेटता, उठाता और फ़िर ट्रक में डालता हुआ। शहर फ़िर से साफ़ दिखने लगा है। सड़कों पर गाड़ियों की रफ़्तार पूर्ववत हो गई है। जिन्दगी की भी। पावर आ गया है!

आंगन में बारबाक्यू पूर्ववत पड़ा है। तूफ़ान की याद दिलाता हुआ....... जहाँ-तहाँ दियासलाई के डब्बे ....

अपार्टमेन्ट की मरम्मत हो गई, लेकिन ब्रेन्डा जैसे बदल गई है। कुछ सामान अब भी अपार्टमेन्ट के इकलौते सूखे हिस्से में पड़ा है और उसे वापस लौटने में कोई दिलचस्पी नहीं।

'आखिर उसे वापस लौट कर उसी अपार्टमेन्ट में आना तो है न? सहयोग करे तो उसी का फ़ायदा होगा। या फ़िर हम दूसरा किराएदार लें, यदि वह सामान हटाए। वह आयेगी न?' उसने नीरज से पूछा।

''शायद नहीं।''

''क्यों।''

''मुझे आज जेरेमी ने बताया कि वह अब उसके साथ रहने को राजी हो गई है। वे शादी करने जा रहे हैं।''

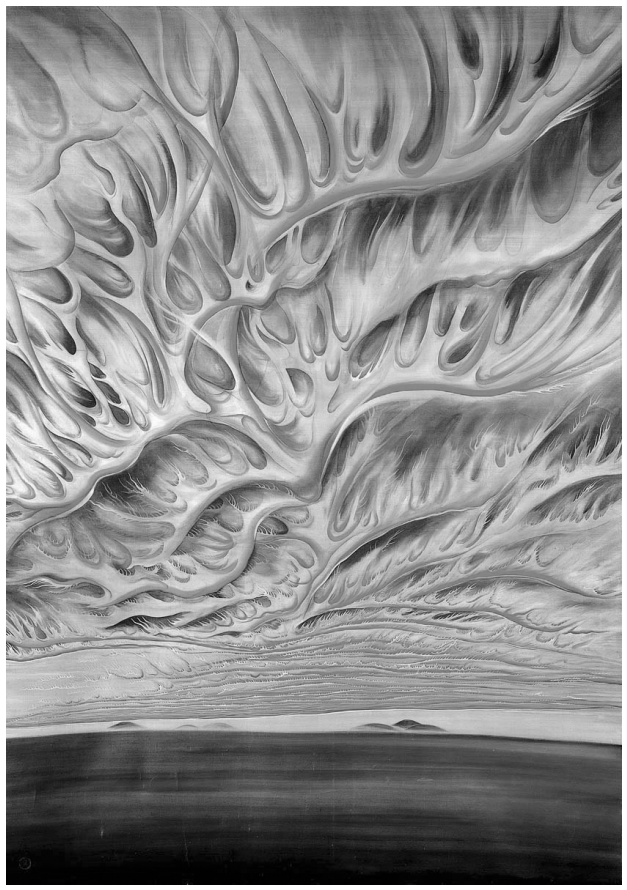

''जुड़ने से पहले बिखरना जरूरी होता है क्या ?'' दिवा देर तक सोचती रही। ◆

फ़ेमा-फ़ेडेरल एमर्जेन्सी मैनेजमेन्ट आर्गनाइजेशन

गुस्ताव, अलीशिया, कैटरीना-तूफ़ानों के नाम।

❑

▪ **कहानी** – विजय शर्मा

मजबूत कदम

शुरू से यही होता आया है। घर में किस रंग के परदे लगेंगे, कौन-सी सब्जी बनेगी, कितने बजे बनेगी सब बातें मम्मी जी तय करती। कहाँ जाना है, कहाँ नहीं जाना है, यहाँ तक कि कौन-सा टी.वी. चैनल देखा जाएगा, यह भी मम्मी जी ही तय करती हैं और राजेश आँख मूँद कर उनकी मर्जी मानता चला जाता है।

उसकी सलाह लेने की बात किसी के मन में न आई। माँ–बेटे ने मिल कर फैसला कर लिया। माँ ने निर्णय लिया और बेटे ने उनकीह ाँमि ेंह ाँि मलाद ी,उ सप रअ पनी स्वीकृति की मुहर लगा दी। उस पर अपनी स्वीकृति की मुहर लगा कर दोनों ने उस फैसले को मुहरबन्द कर दिया। फैसला जिससे उसका भी संबंध है, पर उससे कुछ पूछने, उससे कोई सलाह करने की बात कभी उन दोनों के मन में न आई। उन दोनों को इस बात की कोई जरूरत ही महसूस नहीं हुई कि उसे भी इस फैसले में शामिल किया जाना चाहिए, उसकी भी इस सारी बात में कोई भूमिका है, उसका भी कोई अस्तित्व है यह सीधे–सीधे उसके अस्तित्व को नकार देना था और इस बात को वह स्वीकार नहीं कर पाई। अपने अस्तित्व का इस तरह उन दोनों के द्वारा नकार दिया जाना वह स्वीकार नहीं कर पाई, उसके अन्दर गुस्सा, खीझ, बेबसी सब गड़मड़ होने लगे। आत्मसम्मान सिर उठा कर खड़ा हो गया और उससे जवाब माँगने लगा। अस्तित्व सामने खड़ा होकर अपने अस्तित्व का सबूत माँगने लगा उसका सर्वांग काँप गया। वह भीतर से हिल गई। पर इसी एक फैसले ने उसेभ ीए कग म्भीरफै सलेके ि लएत ैयार करि दया।अ बत कव हस बस हनक रती आर हीथ ीब सअ बअ ौरन हीं,व हक ोई माटी की मूरत नहीं कि जब चाहा पूजा और जब चाहा पानी में बहा दिया। वह एक जीती–जागती इंसान है और उसे भी अपने फैसलेल ेनेक ाह कह ै ाउ सेअ फसोसह ो रहा था क्यों उसने अपने फैसले लेने का हक दूसरों को सौंप दिया था।

शुरू से यही होता आया है। घर में किस रंग के परदे लगेंगे, कौन-सी सब्जी

समीक्षा के क्षेत्र में काफी लिखा है। रंग प्रसंग और चर्चित पत्रिकाओं में नाम बराबर दिखता है। कुछ कहानियां प्रकाशित। अध्यापन से सम्बद्ध। मज़बूत कदमउ नकीन यीं लखीक हानियोंम ेंस े एक है।

सम्पर्क—

151, New Baradwari,
Jamshedpur - 831001,
Phone - 09430381718

बनेगी, कितने बजे बनेगी सब बातें मम्मी जी तय करती। कहाँ जाना है, कहाँ नहीं जाना है, यहाँ तक कि कौन-सा टी.वी. चैनल देखा जाएगा, यह भी मम्मी जी ही तय करती हैं और राजेश आँख मूँद कर उनकी मर्जी मानता चला जाता है। उसे आश्चर्य होता है, कैसे छः फुट का जवान कचकड़े के बबुआ की तरह माँ की हर बात पर हाँ में सिर हिलाता जाता है। उसकी अपनी पसन्द-नापसन्द कुछ है ही नहीं। 'हाँ मम्मी जी', 'हाँ मम्मी जी' के अलावाक ोईब ोलउ सकेकं ठस ेफू टता ही नहीं है। उसे कभी-कभी लगता है कि वह उसके पास मम्मी जी से पूछ कर ही आता है। या फिर जब वे कहती हैं तब आता है। उसकी अपनी मर्जी नाम की कोई चीज है ही नहीं।

गलती उसकी भी थी। उसने पहले-पहल कभी कोई आपत्ति न की। वह सोचती थी कि आखिर उसका पति उनका एक मात्र बेटा है। वे जो करेंगी, उसकी भलाई सोच कर करेंगी। शायद आपत्ति न करके उसने बड़ी गलती की, पर अब क्या हो सकता है ? बीता समय लौटता नहीं है। पता नहीं, अगर वह शुरु में इन बातों पर रियेक्ट करती तो क्या होता? अ बउ सेश ाकह ोताह ैि कक ु छ होता भी। उसकी सहेली मन्नो कहा करती थी, यदि बन्दर को तुम पहले खों कर दो तो वह भाग जाता है वरना वह तुम पर खौखियाता है। पर उसने कभी राजेश की माँ को इस तरह, अपनी प्रतिद्वंद्वीक ीत रहन हींद ेखाथ ा।उ नप र खोखियाने की बात उसके मन में नहीं आई थी। और अब पानी सर से ऊपर गुजर चुका था।

काफी दिन वह चुप रही। अब नहीं रहती है। इससे फायदा कम, नुकसान ज्यादा होता है। खूब तू-तू मैं-मैं होती है। घर का वातावरण आए दिन विषाक्त हो, उठता है। उसके मन में सास के लिए साराअ ादरस माप्तह ोच ुकाथ ा।व ेउ से कहीं से उसकी या राजेश की भलाई करने वाली नजर नहीं आती हैं। उसे उनके व्यवहार में जरा भी प्यार-प्रेम नजर नहीं आता है। इसमें भी शक है कि वे राजेश को प्रेम करती हैं। वे शायद अपने अहं से ज्यादा किसी और को प्रेम नहीं करती हैं। खुद को भी नहीं, वरना कुछ तो अपना नफा-नुकसान सोचतीं। जब वह आई-आई थी उसे यह देख कर बड़ा अजीबल गताथ ि कज रा-जरास ेब ात के लिए राजेश अपनी माँ पर निर्भर करता है। उन्हीं के कमरे में ज्यादा-से-ज्यादा समय बिताता है। चलो मान लिया यह ठीक है, पर उन्हीं का बाथरूम यूज़ करता है। उसका पेस्ट और ब्रश उन्हीं के बाथरूमम ेंर हताह ैा उ सकेक पड़ेउ न्हीं के कमरे के बार्डरॉव में रहते हैं। वह वहीं बैठक रट ी.वी.द ेखताह ै,ड ्राइंगरू मम ें बैठ कर नहीं। एकाध बार उसने दबे स्वर में कहा कि वह अपना सामान अब अपने कमरे में ले आए, पर कुछ असर नहीं हुआ।र ातब ारहए कब जेत कद ोनोंम ाँ बेटे टी.वी. देखते। वह अपने कमरे में बैठी पति का इंतजार करती रहती। जब राजेश सोने आता उसकी माँ खुद दूध गरम करके लाती। ''इसे मेरे हाथ से दूध पीए बिना नींद नहीं आती है।'' उनका पक्का मत था। उसे दूध लाने की मनाही थी। यदि कभी ले आती तो मम्मी जी गिलास छू कर कभी ज्यादा गरम, कभी कमग रमह ोनेक ी शिकायतक रतीअ ैर उसके किचेन में ले जाने के पहले उसके हाथ से गिलास ले लेती। वे चाहे जैसा भी दूध लाती उसका टम्प्रेचर ठीक होता। राजेश बिना किसी ना नुकुर के पी लेता। इतने पर रुक जाता तो गनीमत होती वे जब मन करता बेटे-बहू के कमरे में, बहू का कमरा कहना ज्यादा सटीक होगा बेटा तो सदा उन्ही के कमरे में रहता था, चली आतीं। वह हड़बड़ा कर अपने कपड़े ठीक करती लेटी-बैठी होती तो उठकर खड़ी हो जाती। मगर कब तक ऐसा करती, बाद में बैठी रहने लगी। यदि उन्हें अपने सम्मान का ध्यान न था तो वह कब तक सम्मान करती। वैसे भी रिस्पैक्ट इज़ कमांडेडन ॉटि डमांडेड़ब ादम ेंव हढ ीठ होती गई। वे कुछ कहती रहतीं, वह कुछ और करती रहती। उलट कर जवाब भी देने लगी। पर उन लोगों का ढ़र्रा न बदला।

उसे बहुत अखरता जब बिना बात, बात-बात पर उसके माता-पिता को घसीट लिया जाता। माता-पिता ने भरसक खूब सामान दिया था कोई कसर नहीं छोड़ी थी। आजकल उसे उन लोगों पर भी गुस्सा आता है। उन लोगों ने राजेश और उसकी कुंडली मिलावाई थी। क्यों नहीं उसकी और मम्मी जी की कुंडली चेकक राईथ ी? क योंन हींउ नल ोगोंन े उनके स्वभाव के बारे में पता किया था ? केवल दो मंजिला मकान देख कर लहालोटह ोग एथ ेाल ड़केके र ंग-रूप को देखा, उसमें रीढ़ है या नहीं, वह बड़ा हुआ है या नहीं यह सब क्यों नहीं जाँचा-परखा ? बेटी देने से पहले माता-पिता को अवश्य देख लेना चाहिए कि जिसे अपनी बेटी सौंप रहे हैं वह जिन्दगी में सीधा खड़े होने की क्षमता रखता है या नहीं ? गुस्सा तो उसे अपने आप पर भी खूब आता है। वह पढ़ी-लिखी थी। शहर की लड़की थी फिर उसने क्यों माता-पिता की सारी बातें आँख मूँद कर मान लीं ? क्यों नहीं कहा कि वे इन लोगों के व्यवहार को भी परख लें तब उसकी शादीक रें।अ ाजव हय हस बस ोचर ही है लेकिन जब उसकी शादी की गई थी वह मात्र तेइस साल की लड़की थी। तेइस साल छोटी उम्र नहीं है लेकिन उसका पाला कभी ऐसे लोगों से नहीं पड़ा था। उसके घर में उसके माता-पिता एक दूसरे का आदर करते हैं सब बातें

मिल बैठ कर तय होती हैं। उसकी माँ किसी फैसले से पहले उसके पिता से अवश्य सलाह करती हैं। पापा भी ऐसा ही करते हैं। किसी घर में लोग इससे अलग व्यवहार करते होंगे इसकी समझ तब उसमें कहाँ थी ? उसे सपने में भी कभी ख्याल नहीं आया कि उसके माता-पिता कभी कोई गलत काम कर सकते हैं,उ सकेि लएक भीक ोईग लतफै सला कर सकते हैं। लेकिन आज वह जानती है कि माता-पिता भी जाने-अनजाने में बहुत सारे गलत काम करते हैं। क्या मम्मी जी भी अनजाने में यह सब करती हैं ?

शुरु-शुरु में जब वे उसके पहनने खाने को निश्चित करती थी तो उसे अच्छा नहीं लगता था। उसने पहले कभी प्रतिवाद नहीं किया। वह उनसे पूछे बिना कोई काम नहीं कर सकती है, यह बात शीघ्रउ सेज ताद ेग ईथ ी ।ए कब ारक ी बात है, उसने अपनी एक जोड़ी पुरानी चप्पलउ ठाक रअ ायाक ोद ेद ी ।अ म्मी जी ने घर सिर पर उठा लिया।

''किससे पूछ कर घर की चीज़ किसी को दे दी ? माँ-बाप ने कोई तमीज़ नहीं सिखाई है। बड़ों का आदर करना नहीं सिखाया है।''

उसने दबी जबान में कहा, ''चप्पल पुरानी थी।''

फट पड़ी वे, ''पुरानी थी! बहा दो घर की सारी चीज़ें। कमाना पड़े तब पता चले, कैसे आती हैं चीज़ें ? पुरानी थी, उठा कर दे दी। कल को मैं भी पुरानी लगने लगूँगी, मुझे भी उठा कर फेंक देना। बड़े धन्ना सेठ की बेटी है। बाप ने दहेज में घर भर दिया है। लुटाओ।''

वेय हींन हींरु कीं,ध मकीभ रेस् वर में बोलीं, ''कान खोल कर सुन लो, बिना मुझसे पूछे इस घर से तुम तिनका भी किसीक ोन हींद ेस कतीह ो ।स मझग ई कि किसी और तरीके से समझाऊँ ?'' वह सिर्फ रोती रही।

शाम को जब राजेश घर लौटा मम्मी जी ने दरवाजे पर ही शुरु कर दिया, ''बेटा अब यह घर बरबाद हो कर रहेगा। घर की चीज़ें यदि ऐसे ही दान की जाती रहीं तो हो चुका।''

राजेश ने पूछा, ''क्या हुआ मम्मी जी?''

''होगा क्या तुम्हारी बहू बहुत दानवीर कर्ण बनी हुई है। घर की चीज़ें बिना किसी से पूछे-गछे उठा कर दान करती रहती है।'' और वे अपनी ओर से नमक मिर्च लगा कर काफी देर तक पूरी रामायण सुनाती रहीं।

सारे समय वह कमरे में बैठी रही। गुस्से और अपमान से बाहर नहीं निकली। बहुत देर बाद राजेश ने कमरे में आकर मात्र इतना ही कहा, ''जो भी किया करो मम्मी जी से पूछ कर किया करो।'' वह चकित रह गई राजेश के इस व्यवहार से। न उससे कुछ पूछा, न कोई सफाई देने का मौका दिया न उसकी भावनाओं की फिक्र की बस 'मम्मी जी की बात माननी चाहिए' हुक्म सुना दिया। उसका मन किया था कि अपना सिर दीवार से दे मारे।

वह कुछ नहीं कर पाती थी। एक बार जब वह अपनी मनपसन्द साड़ी पहन कर कमरे से निकली उसके मन में भोली-सी इच्छा थी कि उसकी प्रशंसा हो। कमरे से बाहर निकलते ही मम्मी जी से सामना हो गया। देखते ही बोली, ''ये क्या पहन लिया। कहाँ से ऐसा खराब रंग चुना? च लोउ तारोइ से,व ोव ालीप हन लो जो मेरी भाभी ने दी थी।'' ऐसा नहीं था कि साड़ी का रंग खराब था। बहुत सुन्दर रंग था, पर उसने उनसे बिना पूछे, बिना हँकारी भराए पहन ली थी। इसलिए उसका रंग खराब हो गया था। दूसरी बात यह साड़ी उसे उसके मायके से मिली थी। भला कैसे अच्छी हो सकती थी ? उलट कर जबाब देने का मन किया पर ऐसे संस्कार न थे माता-पिता ने सिखाया था। ''सास को उलट कर कभी जवाब न देना। उन्हीं के संग रहना है, जो भी कहें मान लेना। प्यार से उनका मन जीतना। एकलौता बेटा है। तुम एकमात्र बहू होगी, सास तुम्हें हथेली पर लिए फिरेगी।''

''बन्नो रानी! आपके तो राज हैं। न ननद की ईर्ष्या, न देवरानी जिठानी की खिटखिट।'' शादी तय होने पर बगल की विमला भाभी ने कहा था, बगल की विमला भाभी का परिवार बहुत बड़ा था। कई देवरानी, जिठानी, ननदें रोज कुछ-न-कुछ कलह चलती रहती थी। वह उन्हें देख कर सोचती थी, कहीं उसकी शादी ऐसे ही किसी परिवार में न हो जाए। जब उसकी शादी राजेश से तय हुई और उसे पता चला कि वह एकलौता लड़का है तो कहीं दूर उसके मन ने राहत की साँस ली थी। ससुर भी न थे। पढ़ा-लिखा, कमाता, एकलौता लड़का, कार, शहर के पॉश इलाके में दो मंजिला बँगला, पिता ने काफी भाग-दौड़ के बाद रिश्ता तय किया था। काश पिता ने दो मंजिला बँगले के साथ-साथ उसकी सास के भी बारे में भी जान लिया होता। उनके बारे में भी खोज-खबर कर ली होती।

शादी के पहले और सगाई के बाद मिले कुछ महीनों के समय में वह कल्पना करती। बस पूरे परिवार में माँ, बेटा और अब वह, उस परिवार का अंग होगी। खूब प्यार करेगी अपनी सास को,

''बन्नो रानी! आपके तो राज हैं। न ननद की ईर्ष्या, न देवरानी जिठानी की खिटखिट।'' शादी तय होने पर बगल की विमला भाभी ने कहा था, बगल की विमला भाभी का परिवार बहुत बड़ा था। कई देवरानी, जिठानी, ननदें रोज कुछ-न-कुछ कलह चलती रहती थी।

सास भी माँ होती है। लड़कियों की अपनी माँ तो शादी के बाद बस नाम भर की माँ रह जाती है, असली माँ तो सास हीह ोतीह ै ।व हअ पनीस ासक ोख ूब-खूब प्यार करेगी। उसे मालूम हो गया था कि उसकी होने वाली सास के बेटी न थी, वह उन्हें बेटी का प्यार देगी। बहू से ज्यादा वह उनकी बेटी होगी, पर शादी के बाद जल्द ही उसे पता चला, वे मात्र सास हैं। माँ नहीं बन सकती हैं। वे केवल राजेश की माँ हैं और उसे प्यार करने का अधिकार वे किसी भी कीमत पर किसी को नहीं दे सकती हैं। राजेश उनकाअ ैरम ात्रउ नकाह ै ।व ेि कसीके साथ उसको शेयर नहीं कर सकती हैं। उन्हें पूरा-का-पूरा राजेश चाहिए। राजेश के जीवन को उन्होंने हथिया रखा था। उसप् यारस ेउ सेब ड़ास फोकेशनह ोता।

वे अपने इस ऑल परवेडिंग प्यार की छाया में राजेश के अलावा किसी को नहीं ले सकती थीं और न ही राजेश को इस घेरे से बाहर निकलने दे सकती थीं। भला प्रेम कैसे इतना दम घोटूँ हो सकता है ? वह सोचती, प्रेम तो मुक्त करने का नाम है। प्रेम स्वतंत्र करता है, बाँधता नहीं है।

पता नहीं राजेश को कभी यह जकड़न क्योंन हींप ताच लती? उ सकीस ासके लिए प्यार का मतलब था, पूरी तौर पर ढंक लेना। वे अपने इस ऑल परवेडिंग प्यार की छाया में राजेश के अलावा किसी को नहीं ले सकती थीं और न ही राजेश को इस घेरे से बाहर निकलने दे सकती थीं। भला प्रेम कैसे इतना दम घोटूँ हो सकता है ? वह सोचती, प्रेम तो मुक्त करने का नाम है। प्रेम स्वतंत्र करता है, बाँधता नहीं है। उसकी सास किसी और को प्यार नहीं कर सकती थीं। उनमें वह माद्दा था ही नहीं। प्यार किस चिड़िया का नाम है जिसे यह न पता हो उसका मन प्यार से कैसे जीता जाए। उसका मन नहीं थाि कस ाड़ीब दलेअ ैरइ सकेब ादव ह बाहर जाए। पर चारा न था, मजबूरन उसने रोते हुए साड़ी बदली और उन लोगों के संग बाहर भी गई। काश उसी दिनम नाक रद ेती ।ि पछलेत ीनस ालम ें ऐसा कई बार हो चुका है। मन मान कर रह जाती है वह। सास साल बीतते न बीतने पहले इशारों में फिर खुल कर बच्चा पैदा करने के लिए कहने लगीं। ''अब बहुत मौज मस्ती हो ली। घर में बच्चे की किलकारी सुनाई देनी चाहिए। बड़ा मन करता है पोता खिलाऊँ। इस घर मेंब हुत ादनस ेि कसीब च्चेक ीअ ावाज नहीं सुनाई दी।'' जैसे वाक्य उनकी रोजमर्रा के बड़बड़ाने में शीघ्र ही शामिल हो गए।

बच्चा वह भी चाहती थी। उसने भी सुखी विवाहित जीवन की बड़ी मधुर कल्पना की थी। उसकी उस दुनिया में सास थी या नहीं पता नहीं। हाँ पति और दो गोलमटोल बच्चे जरूर थे। तेईसवाँ साल लगते शादी हुई थी और अब वह छब्बीस की हो रही थी। उसका बड़ा मन करता कि वह उम्मीदों से हो उसकी कोख फले। उसकी गोद में शिशु खेले, उससे तोलती बातें करे और बच्चे को लेकर हजार मोहक बातें उसके मन में आतीं। अक्सर इन बातों को सोच कर वह अकेले में मुस्काती। पर जब तीन साल के बाद भी उसको बच्चे के आने का कोई लक्षण नहीं दीखा तो वह सशंकित हो उठी पर किससे क्या कहती! पति से कुछ कहने का मतलब था वो सबसे पहले अपनी माँ को सुनाने पहुँच जाते और फिर वे ढिंढोरा पीटने में देर न करती उनकी आदत है कुछ अपने तक नहीं रख सकती हैं वे। पूरी मंडली तक बात पहुँचने में देर न लगती। खासकर के उससे संबंधित कोई बात। उनकी अपनी मंडली है, रमी खेलना, किटी पार्टी करना, हौजी खेलना और अपनी-अपनी बहुओं की ऐसी-तैसी करना। यही उस मंडली के टाइम-पास करने के तरीके हैं। अक्सर कोई न कोई आँटी कहती ''भई कब खिला रही हो मिठाई?'' ''कब दादी बनाओगी?'' ''घर बड़ा सूना-सूना लगता हैअ गरघ ारम ेंब च्चेन ह ों।'' ''घ ारत ो बच्चों की किलकारी से गूँजना चाहिए।'' जल्द ही यह हँसी मज़ाक का टोन आक्रमक और तोहमत वाला होने लगा।

''चेकअप करा लो कहीं बाँझ न हो। आजकल शादी के पहले कुंडली भले न मिलाओ पर डॉक्टरी जाँच जरूर करा लेनी चाहिए।'' एक दिन जब वह उनकी मंडली को चाय देने गई उसने सुना मिसेज अहलूवालिया उसकी सास को सलाह दे रही थी। ''वैसे चिंता की बात नहीं है आजकल उन सबका डॉक्टरी इलाज संभव है।'' मिसेज प्रसाद ने टिप्पणी जोड़ी।

चेकअप वह भी कराना चाहती थी। खैर एक दिन वे डॉक्टर के पास पहुँचे। सास, पति और वह। डॉक्टर ने पति-पत्नी दोनों को जाँच करवाने की बात लिख दी। सास ने तय किया उनके बेटे की जाँच नहीं होगी। उनके बेटे में कोई खराबी नहीं है। उनके खानदान में नहीं है कोई खराबी, फिर उनके बेटे में कैसे होगी ? नतीजन उसकी जाँचों का एक लम्बा सिलसिला चला। बड़ी मानसिक यंत्रणा से गुजरी वह। हर बार टेस्ट के लिए अपने शरीर को अनावृत करना, दूसरों के द्वारा स्पर्श किया जाना, चाहे वे डॉक्टर ही क्यों ने हों, उसे मानसिक रूप से तोड़ जाता। हर टेस्ट के नतीजे से पहले मन में धुकधुकी लगी रहती, पर नतीजा कुछ न निकला। मम्मी जी को लगा यह डॉक्टर बेवकूफ है। मम्मी जी ने निर्णय किया कि किसी दूसरे डॉक्टर को दिखाना चाहिए, सैकेंड ओपिनियन लेना

जरूरी है। अत: डॉक्टर बदला गया। उसे भी लगा डॉक्टर बेवकूफ हो या न हो सैकंड ओपीनियन अवश्य लेना चाहिए। फिर वही सब दोहराया गया। हर टेस्ट में रिपोर्ट सकारात्मक आई। उसमें कोई खराबी न थी। अब क्या हो ?

एक दिन उसने दबी जबान से राजेश से कहा कि वह भी अपना टेस्ट करा ले। भड़क उठा वह, उसकी मर्दानगी पर शक किया था उसने, कैसे सहन करता ? बात तुरंत सास तक पहुँच गई। घर में कुहराम मच गया। खूब चीखीं-चिल्लाई सास ''भला उसकी मजाल कैसे हुई इतनी बड़ीब ातक हनेक ी? ''व ेउ सप रट ूट पड़ी, गनीमत थी मारा नहीं। ''इतनी गन्दी बात उसने सोची भी कैसे ? खुद बाँझ है और उनके बेटे पर इल्जाम लगाती है हमारे खानदान पर लांछन लगाती है। मेरे बेटे में कोई बुराई नही हो सकती है।'' उनका निर्णय पत्थर की लकीर था।

इस बीच एक बार जब पापा उसे ले जाने आए, इलाज के नाम पर मम्मी जी ने उन्हें यह कह कर लौटा दिया। ''अभी इलाज हो रहा है उसमें कोई रुकावट नहीं आनी चाहिए। अभी यह न जा सकेगी।'' पापा को बात ठीक लगी वे बिना उसे लिए लौट गए। वह यहाँ की बातें पापा को बता कर उन्हें दु:खी नहीं करना चाहती थी। फिर अकेले में पापा से बात करनेक ीक ोईग ुंजाइशन थ ी ाय हाँत क कि जब वह अपनी मम्मी को फोन करती, मम्मी जी आकर वहीं खड़ी हो जाती और तब तक वहाँ से न जाती जब तक कि वह रिसीवर रख न देती। वह किसी को नहीं बता पा रही थी कि उसका दाम्पत्य जीवन समाप्त हो चला है। किसे बताती ? कौन बिना उपदेश दिए सुनता ?

अबज बर ाजेशउ सकेे नकटअ ाता उसके अन्दर कोई हलचल न होती। कोई रोमांचन ह ोता ाम नम ारक रव हर ाजेश की इच्छा पूरी होने देती। उसकी अपनी कोई इच्छा राजेश को लेकर अब नहीं रह गईथ ी ाक भी-कभीम नके ि कसीक ोने मेंअ ाशाक ान न्हा-साक न्दीलच मकता, शायद कोई चमत्कार हो जाए। पर जिसकी अपनी रीढ़ न हो उनके संग चमत्कार नहीं होते हैं। राजेश की अपनी रीढ़ न थी। भला ऐसे व्यक्ति के संग चमत्कार कैसे होता ? उसे राजेश का स्पर्श लिजलिजा लगने लगा। जब वह छूता वह खुद को घोंघे की तरह अपने खोल में समेट लेती। सिकुड़ जाती नतीजन राजेश चिड़चिड़ाने लगा, ऐसे मौकों पर वह कहता, ''क्या हो गया है तुम्हें ?'' वह सोचती क्या राजेश अंधा है कि उसे दीखता नहीं है ? वह अक्सर ''तबियत ठीक नहीं है।'' ''मन नहीं कर रहा है।'' जैसी कामचलाऊ बातें कह देती। पर यह कोई हल न था अब उसे राजेश के साथ एक बिस्तर पर लेटना भी नागवार लगने लगा। वह उससे कोई संबंध नहीं रखना चाहती थी। अब राजेश के साथ किसी भी तरह का रिश्ता उसे गँवारा नहीं था। बिस्तर कोल्ड वार ग्राउंड में बदलने लगा। उसका मन घुटता रहता। वह किससे अपने मन को शेयर करे ? उसकी समस्या कौन सुलझा सकता था ? उसे खुद ही कोई न कोई हल निकालना था।

इसी सब में एक साल और निकल गया, पर वह गर्भवती न हुई। सास रोज नई योजना बनाने लगी। कभी बेटे की दूसरी शादी करने की धमकी देती। कभी उसे सदा के लिए घर से निकाल दिए जाने की बात करती। शुरु-शुरु में ये बातें दबीज ुबानस ेह ोतीर हींप रश ीघ्रज ोर-जोर से होने लगीं। रोज ताने देती कि कैसे उसने उनका और उनके बेटे का जीवन बर्बाद कर दिया है। बेटा भी माँ के साथ है, उनकी हाँ में हाँ मिलाता रहता है। एक और नई पत्नी का ख्वाब किसे अच्छा नहीं लगता है, पर बिना तलाक दिए दूसरी शादी इतनी आसान न थी। तलाक झंझट का काम है। वे लोग चाहते थे हर्र लगे न फिटकरी रंग चोखा चढ़े। कई दिन से माँ बेटा सिर जोड़े खुसुर-फुसुर कर रहे थे। उसकी समझ में नही आ रहा था कि दोनों कौन-सी खिचड़ी पका रहे हैं।

उसकी सलाह लेने की बात किसी के मन में न आई। माँ बेटे ने मिल कर फैसला कर लिया। माँ ने निर्णय लिया औरब ेटेन ेउ सप रअ पनीस् वीकृतिक ी मुहरल गाद ीव ेअ पनेए कि रश्तेदारक ा बच्चा गोद ले लेंगी। माँ-बेटे का निर्णय पता चलते ही उसके तन बदन में आग लग गई, क्यों पाले वह किसी और का बच्चा? ज बव हस् वयंक ाब च्चाउ त्पन्न करने में सक्षम है। वह अपराध बोध से भर गई क्योंकि बिना देखे किसी अनजान बच्चे के प्रति उसके मन में आक्रोश और नफरतप लनेल गीथ ी ाव हम न-ही-मन जिद्दी होती जा रही थी। ''नहीं वह किसी और का बच्चा नहीं पालेगी। उसे अपना बच्चा चाहिए।'' वह रोज दिन में कई बार निश्चय करती। जब उन दोनों ने उसके सामने बच्चा गोद लेने का प्रस्ताव रखा, उसने बड़ी दृढ़ता से कह दिया, ''वह किसी का बच्चा गोद नहीं लेगी।'' उसे मालूम था कानूनी तौर पर वे उसके बिना ऐसा कदम नहीं उठा सकते हैं, पर बच्चा परिवार से लेने की बात हो रही थी। यदि ये लोग बच्चा ले आए तो क्या होता। भारत में कानून-वानून की चिंता कितने लोग करते हैं, खासकर ऐसे मामलों में। ये मामले अभी भी घरेलू ही माने जाते हैं।

नहीं वह यह सहन नहीं करेगी वह पढ़ी लिखी समर्थ स्त्री है। वह भला क्यों ऐसे पति के साथ रहे जो उसे उसकी मनचाही नहीं दे सकता। उसकी ख्वाहिश

है एक संतान की इच्छा, अपने पति से एक संतान की इच्छा, खास करके जब वह जानती है वह स्वस्थ है। संतान धारण कर सकती है। यदि यही बातें प्रेम से होती,र ाजेशन ेअ पनाट ेस्टक रवा ि लया होता। मेडिकली उसमें कोई खराबी होती तो वह उसे प्रकृति का खेल मान कर स्वीकार कर लेती। यदि ऐसा होता तो वहउ सकेस ंग ि मलक रज ीवनभ रइ स दुःख को बाँट लेती, इसे दोनों के भाग्य का खेल मान कर स्वीकर लेती। शायद किसी और की संतान गोद लेकर खुशी-खुशी पाल भी लेती। दुनिया में बहुत से ऐसे लोग हैं जिनकी अपनी संतान नहीं होती है। दूसरी ओर ऐसे लोग हैं जो बच्चे पालने में समर्थ नहीं होते हैं और उनके घर में बच्चों की लाइन लगी रहती है। बहुत-सी माँएँ सामाजिक कारणों से बच्चे को अपने पास नहीं रख पाती हैं। वह भी किसी ऐसे ही बच्चे को अपना बना लेती। उसे माँ की भरपूर ममता देती। मम्मी जी के रिश्तेदार का बच्चा पालने में भी उसे बुरा न लगता, लेकिन ऐसे नहीं।

शायद अभी भी वह यही करेगी, पर इन लोगों के संग रह कर नहीं। माँ बेटे ने मिल कर इस सारे दृश्य को कितना कुरूप रूप दे दिया है और उसे खलनायिका साबित करने की भरपूर कोशिश की है। वह इसे कदापि सहन नहीं करेगी। जहाँ सम्मान न मिले वहाँ नहीं रहना चाहिए। वह सम्मान के साथ जीना चाहती है, वह सम्मान के साथ जीएगी, उसने सोच लिया। वह अपने माता-पिता के घर भी नहीं जाएगी। क्यों किसी पर बोझ बने और आज वे रख लेंगे पर चार दिन बाद ? और उनके बाद क्या होगा ? उसकी समस्या रहने खाने की नहीं है। जीवन भर रहने खाने का प्रबंध उसके पिता ने कर दिया है। बैंक में उसके नाम काफी रकम उन्होंने जमा कर दी है। पर वह स्वयं भी सक्षम है उसे एक ऐसा जीवन साथी चाहिए जो उसकी भावनाओं को समझे और उसकी माँ बनने की छोटी-सी ख्वाहिश को पूरा कर सके। अंजलि ने खूब सोचा क्या करे वह ? उसे जल्द ही कुछ करना था।

शादी के पहले उसने फिजिक्स में मास्टर्स किया था। कम्प्यूटर का कोर्स भी किया था। पर कम्प्यूटर्स में जिस तेजी से परिवर्तन होता है। उसकी ट्रेनिंग आउटडेटेडह ोग ईथ ी ।ि फजिक्सस ेभ ी वहअ ाजअ ाउटअ ॉफट चह ै ाप रक ोई बात नहीं कोशिश करने में क्या हानि है। यूँ हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने से काम नहीं चलेगा। उसने कम्प्यूटर कोर्स ज्वॉइन कर लिया। खूब पत्र-पत्रिकाएँ और किताबें पढ़ने लगी, यह सब शुरू करना आसान न था। यह सब उसने अपनी जिद्द से शुरु किया। इससे घर में जो कलह हुई उसकी परवाह उसने नहीं की। उसकी जिद्द के सामने राजेश और मम्मी जी को झुकना पड़ा। छः महीने में उसका आत्मविश्वास लौटने लगा। दिमाग पर पड़ी धूल साफ होने लगी। पढ़ा-लिखा फिर से मन में लौटने लगा। दिमाग के जाले साफ होने लगे। समय भी कुछ अच्छे तरीके से कटने लगा।

उसने अखबार में नौकरी के विज्ञापन देखने शुरु किए। एक दो जगह चुपचाप अप्लाई भी कर दिया। उसे डर था कि कहीं उसका इंटरव्यू लेटर सास के हाथ न पड़ जाए। इसलिए पोस्टमैन के आने के समय वह दरवाजे के पास रहती। पर जिसब ातक ाड रथ ाव हीह ुआ ाप हला कॉल लेटर उनके हाथ में पड़ गया। लगीं चीखने-चिल्लाने। ''यह सब क्या चल रहा है ? घर में यह सब चल रहा है और किसी को कानोकान खबर नहीं। किसी से पूछने, सलाह करने की जरूरत नहीं रह गई है। हम सब मर गए हैं क्या ?''

''और भी कुछ चल रहा है जो मुझे नहीं मालूम तो कृपया तुम्हीं बता दो।'' सारीब ातब ढ़ा-चढ़ाक रब तानेके स ाथ उन्होंने बेटे से कहा। वे बात को दूसरी दिशा में ले चलीं। मगर अब अंजलि पर इन बातों का असर नहीं होता। न ही वह बैठ कर मम्मी जी के शब्दों में 'टसुए बहाती'। उसने कह दिया, घर में पड़ी-पड़ी क्या करे, बोर हो जाती है, अतः काम करेगी। समय कट जाएगा और चार पैसेभ ीघ ारम ेंअ ाज ाएँगे।उ सकीद ृढ़ता देख वे मान गई, काश! वह पहले से ही इतनी दृढ़ होती। उसने मन को समझाया, जो हुआ सो हुआ, जब आँख खुले तभी सवेरा।

फिर इंटरव्यू देने का सिलसिला चला। पहले पहल वह बोर्ड का सामना करने से घबरा जाती थी और आते हुए उत्तर भी ढ़ंग से नहीं दे पाती थी। पर धीरे-धीरे उसका आत्मविश्वास लौटने लगा।

इस दौरान उसके मन में बड़ी उथल-पुथल चलती रही। वह सिर्फ काम करने की नहीं सोच रही थी। उसका इरादा एक बड़ा कदम उठाने का था। उसने इस घर, इन लोगों से दूर रहने का, इनसे संबंध समाप्त करने का निश्चय कर लिया था और उतना बड़ा निश्चय अकेले करना इतना आसान न था। राजेश उसका विवाहित पति था। उसने उसके साथ अग्नि को साक्षी मान कर कर सात फेरे लिए थे। उसके संस्कार आड़े आ रहे थे। वह मन को समझाती जब राजेश ने उन भाँवरों की लाज न रखी तो वह क्यों बँधी रहे इन बेकार के बंधनों में ? अपने परम्परागत मन को, बचपन से मिले अपने संस्कारों को तोड़ने में, बदलने में उसे काफी मशक्कत करनी पड़ी। उसकी दादी कहा करती थी। ''जिस घर में लड़की की डोली जाती है, वहाँ से उसकी अर्थी उठती है। ससुराल के सिवा औरत का कोईअ ौरि ठकानान हींह ोताह ै।''स् वयं जिन्दगी भर गुलामी करने के बाद दादी-

नानी ऐसी बातें अपनी लड़कियों को क्यों घुट्टीम ेंि पलातीह ैं? क योंउ नकेग लेम ें गुलामी का पट्टा डालती हैं ? क्यों उन्हें उसी नरक के लिए तैयार करती हैं ? कितना कठिन होता है घुट्टी में मिली इन बंधनों को काट पाना। मगर किसी को काटना है इन बेड़ियों को, उतार फेंकना है इस जूए को। अंजलि ने सोच लिया है अब नहीं ढोएगी वह, ये बेकार निर्जीव बंधन। जहाँ प्यार-प्रेम, आदर सम्मान न हो वहाँ नहीं रहना उसे। वह एक मनुष्य है, उसे इज्जत के साथ जीने का पूरा हक है। अफसोस करती कि उसे मर्यादा के साथ जीने के अपने हक की बात पहले क्यों न सूझी ?

अंजलि ने राजेश को बहुत प्यार किया था। उसने जी जान से चाहा था कि वह एक समर्थ पुरुष की तरह अपने निर्णय स्वयं ले, सब बातों के लिए अपनी माँ पर निर्भर न करे। उसकी सारी कोशिशें बेकार गई थी। वह राजेश को नहीं बदल सकी थी। इस फ्रंट पर वह फेल हो गई थी। कोई और रास्ता न देख करउ सनेइ तनाक ठोरि नर्णयि लयाथ ा। राजेश को वह अब भी नफरत नहीं कर पाती। उसके मन में राजेश के लिए दया, सहानुभूति का भाव पैदा होता। उसने राजेश को बहुत प्यार किया है, उसे छोड़ना आसान न था। मन में उथल-पुथल मची रहती। लेकिन उसे निर्णय लेना था, अन्यथा वह आईने में खुद का सामना नहीं कर पाएगी।

इन दिनों उसके मन में खूब हलचल मची रहती। मन-ही-मन खुद से खूब से खूब जवाब-सवाल करती रहती। कभी मन में आता तलाक दे दे। कभी प्रतिशोध फन काढ़ लेता, क्यों दे तलाक ? क्यों कर दें इन लोगों को मुक्त। घिसटने दो इन्हें। इन लोगों को इनके किए की सजा मिलनी चाहिए। फिर सोचती वह कौन है इन लोगों की सजा तजबीज करने वाली ? मन कहता, क्यों इन लोगों को किसी और स्त्री का जीवन बरबाद करने का अवसर दे। फिर मन में आता, भाड़ में जाएं ये लोग, वह खुद बच निकलेगी, यही क्या कम है ? उसका जीवन नई दिशा ले रहा है यही गनीमत है। सारी दुनिया का ठेका थोड़े ही उसने ले रखा है। तुरंत मन कहता इतनी स्वार्थी तुम कैसे हो सकती हो ? फिर सोचती तलाक दे देगी तो खुद भी मुक्त हो जाएगी और राजेश भी स्वतंत्र हो जाएगा फिर जो इन लोगों के मन में आए करें, उसकी बला से। फिर सोचती उसे एक नई जिन्दगी शुरु करनी है, मन में कलुष क्यों रखे। यदि वह भी इन लोगों की तरह सोचने लगेगी, इन लोगों की तरह व्यवहार करने लगेगी तो उसमें और इन लोगों में क्या अंतर रह जाएगा। पर बहुत ज्यादा दिन यह स्थिति न रही।

जल्द ही उसे एक मनचाही नौकरी मिल गई। नौकरी मिलते ही उसकी भावनाएँ उदार होने लगीं। उसके मन से कलुष गलने लगा। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं था कि वह अपने निर्णय से डिग गई। नहीं वह अपने निर्णय पर कायम थी, नौकरी के साथ उसके मन को, उसकी कल्पनाओं को, फिर से पंख लग गए। कभी सोचती, अब किसी पुरुष से कोई संबंध नहीं बनाएगी। कभी सोचती, किसी अनाथ बच्ची को गोद लेगी। उसे पढ़ा-लिखा कर योग्य बनाएगी। उस बच्ची में कूट-कूट कर आत्मसम्मान, स्वतंत्रता की भावना भरेगी। कभी सोचती यदि कोई मनमाफिक पुरुष मिल गया तो उससे संबंध बनाएगी और बच्चों को जन्म देगी। जरूरी नहीं कि वह पुरुष उसका पति बने या वह उससे शादी करे। आजकल तो बिना पुरुष संसर्ग के भी बच्चे हो सकते हैं। वह भी माँ बनेगी। उसे बच्चों की लालसा है। यह स्वाभाविक चाहत है। वह खुद को इससे क्यों वंचित करें ? मगर अब दूसरों की शर्तों पर नहीं। जब उसमें कोई कमी नहीं है। वह प्राकृतिक रूप से माँ बनने के लिए सक्षम है तो प्रकृति के इस वरदान से वह क्यों वंचित रहे। उसे पूरा-पूरा हक है कि प्रकृति ने उसे जो क्षमता दी है। उसका वह सम्मान करे। कभी सोचती पति और सास द्वारा दमित औरतों के लिए एक संस्था खोलेगी। कभी कुछ, कभी कुछ, मन उड़ान भरता रहता और ऐसे ही तमाम ख्याल उसके दिमाग में घूमते रहते।

उसने एक वर्किंग वीमेंस हॉस्टल में भी बात कर ली। एक अच्छी तनख्वाह, साथ में कई पर्क्स। बहुत अच्छी नहीं तो बहुत बुरी भी नहीं, गुजारा किया जा सकता था। जिस दिन उसे अपाइंटमेंट लैटर मिला, उसे लगा उसे आज़ादी मिल गईह ै ाछ ारछ ोड़नाइ तनाअ ासानन थ ा। यहाँ वह दुल्हन बन कर आई थी। यहाँ उसने सुहागरात मनाई थी। यह उसका कानूनी घर था। इस घर पर जितना राजेश की माँ का अधिकार था, उतना उसका भी अधिकार था। पर क्या करेगी वह यह घर ले कर, इस पर अपना अधिकार जता कर ? जहाँ उसे मनुष्य के रूप में आदर न मिला, जहाँ उसकी भावनाओं को सम्मान न मिला, जहाँ उसके आत्मसम्मानक ीर क्षान हींह ुई,उ सघ ार, उस सम्पत्ति को लेकर वह क्या करेगी ? जहाँ उसके प्रेम का मान न रखा गया। जहाँ उसे मात्र उपेक्षा, लांछना और अपमान मिला, क्या करेगी वह उस घर और उस सम्पत्ति को लेकर ? हाँ वह यह अवश्य देखेगी कि उसकी तरह किसी और लड़की, किसी और स्त्री का जीवन, ये दोनों माँ-बेटे बर्बाद न करें। उसने एक कदम मजबूती से उठा लिया था। अब एक और कदम उठाना था। ◆

■ **कहानी** – सुधा ओम ढींगरा

कौन सी ज़मीन अपनी ?

यही बात झगड़े का रूप ले लेती—''पर कितनी पहचान सरदार जी, कहीं तो अंत हो, वर्षों से जमीनें ही तो खरीद रहे हैं आप के घर वाले, पैसों का कोई हिसाब-किताब नहीं, यहाँ ज़मीन बिकाऊ है, वहाँ ज़मीन बिकाऊ है, यह टुकड़ा खरीद लो, गाँव की सरहद से लगे खेत ले लो, किल्ले पर किल्ले इकट्ठे करते जा रहे हैं'' मनविंदर का पारा चढ़ते देख मनजीत घर से बाहर दौड़ लगाने चला जाता।

साहित्य की सभी विधाओं में लेखन। पत्रकारिता में भी काफी काम किया है। नेट पर और प्रिण्ट मीडिया दोनों में समान रूप से लगातार सक्रिय। गर्भनाल पत्रिका में हिन्दी के साहित्यकारों के साक्षात्कार चर्चित हुए हैं। 'निकट' के लिए विशेष रूप से लिखी गई कहानी 'कौन सी ज़मीन' अपनी इस अंक में दी जा रही है।

संम्पर्क :
101 Guymon Ct.,
Morrisville, NC-27560.USA
email-sudhaom9@gmail.com

''**ओय** मैंने अपना बुढ़ापा यहाँ नहीं काटना, यह जवानों का देश है, मैं तो पंजाब के खेतों में अपनी आख़री साँसें लेना चाहता हूँ।''

जब वह अपने बच्चों को यह कहता तो बेटा झगड़ पड़ता – ''अपने लिए आप कुछ नहीं सहेज रहे और गाँव में ज़मीनों पर ज़मीनें खरीदते जा रहे हैं।''

वह मुस्करा कर कहता–''ओए पुत्तर, तूँ और तेरी भैण ने मेरा सिर ऊँचा कर दिया है। अमरीका में मेरी मेहनत सफल कर दी है। असमान छू लिया। तूँ डाक्टर बन रहा है और तेरी भैण वकील, बेटा जी, इससे ऊपर तो मुझे और कुछ नहीं चाहिए।''

बेटा बहस करता था–''वह सब ठीक हैप रए कघ ारत ोब नवाल ें,स ारीउ म्रद ो बैड रूम वाले टाऊन हॉऊस में गुज़ार दी। कल को हमारे बच्चे आप के पास आयेंगे तो कहाँ खेलेंगे।''

''पुत्तर जी, पंजाब में खेतों में बड़ा खुला घर बनावाऊंगा, वहाँ खेलेंगे, जब हम यहाँ सब से मिलने आयेंगे तब तेरे और तेरी भैण के पास रहेंगे, वहाँ खेलने के लिए काफी जगह होगी...।''

बेटा उनकी ज़िद के आगे हथियार डाल देता। बेबस सिर झटक कर बुदबुदाता घर से बाहर निकल जाता – ''ही विल नैवर चेंज।''

मनविंदर भी तो बेबस हो जाती थी, दारजी और बेजी की चिट्ठी आते ही मनजीत सिंह सोढी नवाँ शहर (पंजाब) में अपने भाइयों को ज़मीनें खरीदने के लिए पैसे भेज देता था। .....

मनविंदर तड़प कर रह जाती, समझाने की सब कोशिशें बेकार हो जाती थीं–''सिंह साहब घर के खर्चों की ओर भी ध्यान दीजिये, बच्चे छात्रवृत्ति पर पढ़ रहे हैं पर उनके और भी तो खर्चे हैं, चार कारों की किश्तें जाती हैं। इतनी ज़मीनें खरीद कर क्या करेंगे।''

''मनविंदर कौरे, जाटों की पहचान ज़मीनों से होती है'' बड़े गर्व से छाती चौड़ी कर मनजीत सिंह कहता।

यही बात झगड़े का रूप ले लेती – ''पर कितनीप हचानस रदारज ी,क हींत ो अंत हो, वर्षों से जमीनें ही तो खरीद रहे हैं आप के घर वाले, पैसों का कोई हिसाब-किताबन हीं,य हाँज़ ामीन बिकाऊह ै,व हाँ ज़मीन बिकाऊ है, यह टुकड़ा खरीद लो, गाँव की सरहद से लगे खेत ले लो, किल्ले पर किल्ले इकट्ठे करते जा रहे हैं'' मनविंदर का पारा चढ़ते देख मनजीत घर से बाहर दौड़ लगाने चला जाता।

दूसरे दिन ही फिर एक चैक पंजाब नेशनल बैंक में दार जी के नाम भेज देता, मनविंदर बस रो कर रह जाती। रोई तो वह तब भी थी। जब मनजीत सिंह सोढी से 30

वर्ष पहले शादी हुई थी। हालाँकि उसका तो सारा परिवार अमेरिका में था। फिर भी वह रोई थी। दादा-दादी जी को छोड़ते समय, मनविंदर के दो भाई यूबा सिटी (कैलिफोर्निया) के खेतों में काम करते थे, नाजायज़ तरीके से वे अमेरिका में आये थे पर मैक्सिकन लड़कियों से शादी कर जायज़ हो गए थे, यानि ग्रीन कार्ड होल्डर, पाँच साल बाद अमरीकी सिटिज़न बन कर उन्होंने अपना पूरा परिवार बुला लिया था। तब इमिग्रेशन के कायदे कानून इतने सख्त नहीं थे जितने अब हैं, मनजीत को दादा-दादी ने ही तो पसंद किया था। 6 फुट लम्बा, ऊँचा, गोरा, सुंदर सिख और दो छोटे भाई। गरीब घर के बेटे को जान बूझ कर पसंद किया गया था ताकि मनविंदर की कद्र कर सके। नौजवान मनजीत मनविंदर के साथ आँसू बहाता अमरीका आ गया था। मनजीत अधिक पढ़ा-लिखा नहीं था और मनविंदर नहीं चाहती थी कि उसके भाइयों की तरह उसका पति भी खेतों में काम करे। शादी से पहले ही भाइयों को समझा कर, कायल करके उसने उनसे बैंक में अग्रिम राशि-डाउन पेमेंट के रूप में दिलवा कर गैस स्टेशन का लोन लेकर, कैरी (नार्थ कैरोलाइन) में गैस स्टेशन खरीद भी लिया था, शादी के बाद भारत से वे सीधे कैरी ही आए थे। मनजीत सिंह को जब तक ग्रीन कार्ड नहीं मिला, मनविंदर गैस स्टेशन के व्यवसाय में मुख्य भूमिका में रही तथा बाद में मनजीत सोढी उसका मालिक हो गया। मनविंदर सिलाई-कढ़ाई में माहिर थी। गैस स्टेशन मनजीत के हवाले कर उसने उसी समय अमरीकी दुल्हनों के कपड़े सिलने की दुकान शुरू की जो बाद में ''वैडिंग गाउन बुटीक'' बन गया। बीस लोग काम करने लगे, कुछ भारतीय मूल के और कुछ स्थानीय।

अपने आकर्षक व्यक्तित्व और मधुर बोली से मनजीत सिंह कैरी शहर के सब समुदायों में लोकप्रिय हो गया था। तब गिने चुने भारतीय थे। अब तो चारों ओर भारतीय ही नज़र आते हैं। लोग उन्हें प्यार से वीर जी और मनविंदर को भाभी जी कहने लगे थे। तब से अब तक मनजीत का एक ही सपना रहा कि बुढ़ापा भारत में बिताना है। मनविंदर मनजीत की इस उत्कंठा के आगे मजबूर हो चुकी थी, उम्र में इस पड़ाव में वह भारत जाना नहीं चाहती थी, यह देश उसे

अपना-सा लगता। उसका पूरा परिवार अमेरिका में फैला हुआ है। सालों पहले बनाए रिश्ते, जो समय के थपेड़ों से प्रगाढ़ हुए, साथ-साथ फले-फूले वे मित्र, सब कुछ छोड़ना उसके लिए आसान नहीं था .... ये रिश्ते जन्म से मिले रिश्तों से कहीं गहरे हो गए थे। जीवन की कड़कती धूप, बरसात और ठंडक ने इन्हें पका दिया था। भारत के रिश्तों के लिए तो वे बस मेहमान बन कर रह गए थे, जो साल या दो साल में एक बार उन्हें रिश्तेदार होने व अपनेपन का एहसास दिलाते थे। मनजीत आज भी तीस साल पुरानेस म्बन्धोंम ेंह ीज ीर हाथ ा।स मय पर परिवर्तन भी उसकी सोच व रिश्तों के प्रति दृष्टिकोण में कोई अन्तर न ला सका। भारत की प्रगति और बदलता परिवेश भी उसकी ठहरी सोच के तालाब मेंकं करफैं कल हरेंपैदान हींक रस का था। मनजीत को समझाना मनविंदर के लिए बहुत मुश्किल हो रहा था। वह हर समय तनाव में रहने लगी थी।

बच्चों की शादियों के बाद से तो मनजीत मन ही मन पंजाब में घूमता रहता है. ....अ पनेख ेतोंम ेंप हुँचज ाता-तीनों भाई गन्ने चूसते, फिर गन्ने के रस से दार जी गर्म-गर्म गुड़ बनाते और तीनों भाई गर्म गुड़ की भेली सूखी रोटी के साथ खाते। शक्कर में एक चम्मच देसी घी और डलवाने की मनजीते की ज़िद, छोटे भाइयों का बिलबिलाना और पैर पटक-पटक कर अपनी कटोरियाँ बेजी के आगे करना। ऐसे में बेजी बड़ी समझदारी से दोनों छोटों को प्यार से सहलातीं, मुस्कराते हुए कहतीं थीं – ''मनजीता मेरे जेठा पुत्तर है, इसने वड्डा हो कर सानूं

सब नूं संभालना है। इस नूं ताकत दी बहुत ज़रूरत है।'' और दोनों छोटे भाइयों की कटोरी में आधा-आधा चम्मच घी डाल देतीं। सरसों का साग और मक्कई की रोटी परोसते समय भी बेजी चाटी में हाथ डाल कर मुठ्ठी भर मक्खन उसके साग कर डाल देतीं और लस्सी के छन्ने को भी मक्खन से भर देती थीं, छोटों को वे आधे हाथ के मक्खन में ही टाल जातीं।

नींद में भी मनजीत गाँव वाले घर पहुँच जाता.... आधुनिक सुविधायों से सुसज्जित पक्का घर, ट्रेक्टर, कामगार और .... बेजी का बार-बार मनजीत का माथा चूमना,भ इयोंक ाग लेल गनाअ ैरस ाथ सट कर बैठना, दार जी का अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए गर्दन अकड़ा कर अपने दोस्तों को सुनाना – ''पुत्तर होवे ताँ मनजीते वरगा, अमरीका जा के वी सानुं नहीं भुलिया। साडा पेट भर गया पर एह डालर भेजता नहीं थकिया...ज़मीनां जट्टां दा स्वाभिमान हुंदा है- मेरे पुत्तर ने मेरा मान रखिया।''

सुबह मनजीत तरोताज़ा और ऊर्जा से भरपूर उठता-सारा दिन इसी तरंग में रहता कि इतना प्यार करने वाले परिवार में बुढ़ापा कितना बढ़िया गुज़रेगा। बेटा-बेटी तो अपनी ज़िन्दगी में व्यस्त हो गए हैं। कभी-कभी सोचता कि ज़मीनों में दो चार टुक़ड़े बेच कर गाँव का स्कूल ठीक करवा दूँगा, दीवारें काफी गिर गई हैं। कुछ कम्पयूटर भी ले दूंगा-बच्चों को पढ़ाई की सख्त ज़रूरत है। उसकी प्राथमिकता होनी चाहिए। अगर वह पढ़ा लिखा होता तो अमरीका में इतनी सख्त मेहनत न करता, डॉक्टर, साईंटिस्ट, इंजीनियर बन कर वह भी सम्पन्न जीवन जीता।

मनजीतअ पनेअ ापस`ब ातेंक रता- ''दार जी नहीं मानेंगे, वे गुरुघर को चंदा देना चाहेंगे, बेजी को समझा कर उन्हें भी मना लूँगा।''

सुखद कल्पनाओं और भारत लौटने की चाह में वह दिन गिन रहा था।

अंततः वह दिन भी आ गया। मनजीत को गैस स्टेशन खरीदने वाला मिल गया, पार्टी ऐसी थी जिसने उनका बुटीक भी खरीद लिया।

बस अब जल्दी-जल्दी घर का सामान गैराज सेल में रखा गया और कुछ सामान बच्चे ले गए। जो नहीं बिका उसे विएतनाम वैटरंस वाले अपने ट्रक में उठा कर ले गए। मनजीत को अमेरिका में दिन काटने मुश्किल हो रहे थे और मनविंदर उदास-परेशानर हनेल गी ाउ सकेि सरम` हर समय दर्द रहने लगा। बात-बात में झगड़ना दिनचर्या होने लगी थी। मनजीत की दृढ़ता के आगे भारत जाने का वह खुल का विरोध नहीं कर पा रही थी। चुप-शांत यंत्रवत सी वह सारे काम कर रही थी।

''बैंक जा कर मैं सारा पैसा पहले हीव हाँप रिवारम`ें भजवाद`ताह ूँत ाकि जाते ही काम शुरू करवा दूँ।'' मनजीत के इस कथन से मनविंदर के अंदर का लावा ज्वाला मुखी बन फट पड़ा- ''ख़बरदार! सरदार मनजीत सिंह अगर इसप ैसेक ाेह ाथल गाया ाम`ैंअ ारेह मारे बच्चे भी आपका परिवार हैं। सिर्फ पंजाब में ही आप का परिवार नहीं बसता और आपत ाेव षाेंस`क हतेअ ाएँह ैंि कव हाँ कुछ ज़मीन बेच कर सारे काम पूरे करेंगे। कल ही मैं जा कर इसे वकोविया बैंक में जमा करवा दूँगी सी.डी में।''

मनविंदर की कड़क आवाज़ भी मनजीत को विचलित नहीं कर पाई और वह अपने मीठे लहजे़ में फिर बोला- ''सरदारनी जी, इतना गुस्सा ठीक नहीं, हमने इस देश में वापिस थोड़े ही आना है। गए तो गए। पलट-पलट कर क्या देखना।''

मनविंदर बिफर पड़ी-''क्या बच्चों कोि मलनेन हींअ ाएंगे? त बउ नसेप ैसे मांगेंगे। पोते-पोती, नवासे नवासी को गिफ्ट देने के लिए बच्चों के आगे हाथ फैलायेंगे।''

वह शांत लहज़े में बोला ''ओ मेरी हीरे, अपने रांझे की बात गौर से सुन, हमारे बच्चों को इस पैसे की कहाँ ज़रूरत है ाड ॉक्टरअ ारेव कीलके प ासत ार ब्ब की मेहर होती है। गिफ्ट हम पंजाब से लायेंगे।''

मनविंदर का धैर्य अब जवाब दे गया था – ''नवाँ शहर में इस पैसे की ज़रुरत है ? जहाँ ज़मीनों की कीमतें आसमान छू रही हैं। अपनी ज़िद पर अगर अड़े रहे तो आप अकेले भारत जायेंगे। मैं यहाँ इसी टाऊन हॉउस में रह कर बच्चों को मिलने जाती रहूँगी और आप पंजाब में अपने परिवार के साथ बुढ़ापा बिताना।''

यह सुनते ही मनजीत ढीला पड़ गया... मनविंदर के व्यक्तित्व के इस पहलू से वह वाकिफ था। बेवहज वह उत्तेजित नहीं होती, पर अगर कोई निर्णय वह ले ले तो उसे वापिस मनाना भी आसान नहीं।

आसान तो मनजीत को कुछ भी नहीं लग रहा, दो दिन बाद की वापसी है और एक-एक पल काटना कठिन हो रहा है। मन खेतों की मेड़ों और पैलियों में झूम

''नवाँ शहर में इस पैसे की ज़रुरत है ? जहाँ ज़मीनों की कीमतें आसमान छू रही हैं। अपनी ज़िद पर अगर अड़े रहे तो आप अकेले भारत जायेंगे।म`ैंय हाँइ सीट ाऊनह ॉउसम`ें हक रब च्चोंक ाे मिलनेज ाती रहूँगी और आप पंजाब में अपने परिवार के साथ बुढ़ापा बिताना।''

रहा है और धड़ यहाँ घिसट रहा है। पंजाबी गुट और अन्य समुदायों ने विदाई की पार्टी दी पर मनजीत ने बस औपचारिकता निभाई। मनजीत का मन अमेरिका में उचट गया था। कैरी से न्यूयार्क और न्यूयार्क से दिल्ली तक का सफर एयर इंडिया के जहाज़ में, उसने तो सो कर या रब ने बनाई जोड़ी फिल्म देख कर काटा, टाऊन हॉउस को किरायेदार को सौंपने और सामान की पैकिंग करने से मनविंदर बहुत थक गई थी। वह तो सारे रास्ते सोती गई। दोनों की आपस में कोई ज़्यादा बातचीत नहीं हुई।

जैसेह ीज हाज़न `इ ंदिराग ाँधीए यर पोर्ट का रनवे छुआ, मनजीत सिंह की आँखों में आँसू आ गए। ''30 वर्षों की कैद से छूट कर आ रहा हूँ।'' अपने आप से बात करते हुए उसने नैपकिन से अपने आँसू पोंछे।

मनविंदर खिड़की से बाहर एयरपोर्ट की चहल-पहल देखती रही, कस्टम की औपचारिकता निभा कर जब सरदार मनजीत सिंह एवं बीबी मनविंदर कौर बाहर निकले तो भतीजों ने फतेह बुला कर स्वागत किया। मनजीत बाग बाग हो गया ... दो भतीजे वैन लेकर आये थे। दिल्ली से नवां शहर जाने में पाँच घंटे लगे।

ऊबड़-खाबड़ सड़कों के हिचकोले, चारों ओर उड़ती धूल देख पहली बार मनविंदर बोली-''भारत कितनी भी तरक्की कर ले, सड़कें कभी भी ठीक नहींह ोंगी,प्रदूषणत ोब ढ़ताह ीज ार हा है।''

मनजीत ने बीच में बात काट दी- ''सोनिओ, अपने देश की धूल मिट्टी का भी आनन्द है। 30 वर्षों में गोरों की धरती पर मिट्टी का सुख भी नहीं मिला।''

''ताया जी, वहाँ बिलकुल धूल नहीं होती, कैसे इतनी सफाई रखते हैं ?'' बड़े भतीजे सुखबीर ने पूछा।

''अमरीका बड़ी प्लानिंग के साथ बना हुआ है। आप को बड़ी-बड़ी इमारतें मिलेंगी या साफ सुथरी सड़कें, खुली जगह बहुत कम देखने को मिलती है। खाली जगह को भी घास और फूलों से भर देते हैं। ताकि धूल ना उड़े।''

''पर ताया जी, सड़कों की मरम्मत करतेस मयअ ौरइ मारतेंब नातेस मयत ो गंद पड़ता होगा, धूल-मिट्टी उड़ती होगी।''

''पुत्तर जी, उनके काम करने के तरीके भी बहुत ढंग के हैं। एक ट्रक फैला-बिखरा सामान उठा ले जाता है और दूसरा ट्रक पानी की टंकी लाता है और सारी जगह धो जाता है।''

''सुखबीर आँखें फैला कर बोला-'' हैं ताया जी फिर तो आप स्वर्ग में रहते हैं।

''नहीं ओय, स्वर्ग में काले पानी की सज़ाहै ास बकु छऊ परी,ब नावटीअ ौर बेरंगी दुनिया, भावनाएँ, गहराई, सच्चाई और रस तो अपने देश में है।'' मनजीत सिंह अपनी धुन में बोलता जा रहा था। भतीजेस ुनर हेथ `अ ौरम नविंदर पछली सीट पर इन सब बातों को अनसुना करते हुए सो गई थी। घर में प्रवेश करते ही बेजी, दार जी ने आशीर्वादों के साथ दोनों के माथे चूम लिए। ऊपरी मंजिल पर एक कमरा ठीक कर दिया गया था। उनका सामान वहीं टिका दिया गया। जल्दी-जल्दी खाना खिलाया गया। एक बात ने दोनों का ध्यान आकर्षित किया कि रसोई भतीजों की पत्नियों के हवाले थी और उनमें से कोई भी सुघड़ गृहणी जैसा व्यवहार नहीं कर रही थी-सभी काम को निपटाने और जल्दी-जल्दी समटने में लगी थीं। उनका अधैर्य स्पष्ट नज़र आ रहा था।

आधी रात में मनविंदर पेशाब के लिए जब नीचे गई तो मनजीत भी उसके साथ नीचे आया। ऊपर कोई बाथरूम नहीं था, नई जगह और घना अँधेरा था और ....वह जानता था कि वह अँधेरे से बहुत डरती है। उसने उसके कंधे पर हाथ रख कर कहा था - ''मन्नी, कुछ दिन तक़लीफ सह लें, मैं तुझे बड़ा और अच्छा सा घर बनवा कर दूंगा। बहुत साल तुमने इंतजार किया है।''

मनविंदर कुछ बोली नहीं थी, बस गहरी साँस ले कर चुप हो गई थी।

दूसरे दिन मनजीत तो भाइयों के साथ खेतों में चला गया। पूरे गाँव और आस-पास की अपनी ज़मीनें देखने।

मनविंदर बहुओं के साथ रसोई में जाने लगी तो बेजी ने टोका-''नही मुन्नी कुछ दिन ताँ आराम कर लै, करन दे इन्हां नु कम।'' बेजी प्यार से मनविंदर को मन्नी कहते थे-''बेजी, मैं खाली नहीं बैठ सकती। साथ काम करवा देती हूँ। जल्दी निपट जायेगा।''

मनविंदर रसोई में गई तो थोड़ी देर बाद सब बहुएं एक के बाद एक करके वहाँ से खिसक गईं। कोई कपड़े धोने और कपड़े सुखाने के बहाने। मनविंदर अकेली ही रसोई में लगी रही। उसे तो हर तरह के काम की आदत थी। अमेरिका में हलवाई, धोबी, बावर्ची, मेहतरानी वह खुद ही तो थी। उसे हैरानी तो इस बात की हुई कि एक भी देवरानी उसकास ाथद `नेन हींअ ाई।ए कस `रम ें तेल लगाती रही, दूसरी बेजी के और अपने शरीर की मालिश करती रही। वे उससे बेपरवाह, बेखबर धूप में बैठीं अपना बदन सहलाती रहीं।

सारा कुनबा जब थका हारा घर लौटा तो मनविंदर ने बड़े प्यार और मुहब्बत से सब को खाना खिलाया।

लक्खी से रहा नहीं गया, कह ही दिया उसने - ''भाबी, बेजी दी रसोई दी

याद आ गई, आप दियां छोटियाँ देवरानियाँ तां निक्कामियां, नुआं उस तो वी गईयाँ गुज़रियाँ, बेजी तां सब कुज छड के बैठ गए इन्हांनू अकल कौन दवे ?''

''वीरा, ऐसा नहीं कहते घर की औरत को, वह तो लक्ष्मी का स्वरूप है। उसको सम्मान देते हैं चाहें वह कैसी भी हों।'' मन्नी ने मुस्करा कर कहा।

मुस्करा के ही तो लक्खी ने पूछा था-''भराजी, किन्ने दिन रहन दा इरादै, कमरा छोटे काके दै, दोनों पति-पत्नी ड्राईंग रूप विच सोंदे ने।''

''हम यहाँ हमेशां के लिए आप लोगों के साथ रहने, परिवार की धूप-छाँव का आनन्द लेने आएँ हैं।'' मनजीत ने अपने दार जी से कहा था। इतना सुनते हीस बके च ेहरोंके भ ावब दलग एथ े, एक बेरुखी सी झलक आई थी उन सबके मुस्कराते चेहरों पर।

अगर रिश्ते आँखों पर पट्टी बाँध लें तो उन्हें खोलना ही पड़ेगा। उसके अन्दर महाभारत का युद्ध चल रहा था। भावनाएँ पाण्डव बन कौरव बने रिश्तों का स्वभाव एवं व्यवहार समझ नहीं पा रही थीं। उसका कसूर क्या था ?

''बच्चेत ांअ मेरिकाच न ेउ न्हांत ो बिना तेरा दिल किंज लगेगा ?'' बेजी ने निर्विकार भाव से कहा।

''बेजी, हर साल हम उन्हें वहाँ मिलने जाएंगे और छुट्टियों में वे यहाँ हमारे पास आएंगे। अमेरिका में मैं आप सब को बेहद याद करता था ... यहाँ आने तक आप सब को बहुत मिस करता रहा। माँ आप मेरे दिल में हर समय रही हैं ...''

''30 सालां बाद वी।''

''हाँ माँ, 30 सालां बाद वी। जहाँ मिली रोटी वहाँ बाँधी लंगोटी-अमरीका केइ सक ल्चरक ोम ैंअ पनान हींप ाया। आप को नहीं पता मैंने वहाँ दिन कैसे काटे ?'' मनजीत सिंह ने वहाँ जीवन कैसे बिताया... किसी को यह जानने में रूचि नहीं थी।

लक्खी का चेहरा कठोर हो गया-''ज़मीनों पे हक़ जमाने आये हो ?''

''हक़ कैसा लक्खी, मैंने ही तो पैसा भेजाथ ा ास ारीज़ ामीनेंह मारीह ाेत ाेह ैं। एक टुकड़ा बेच कर मैं अपना घर बनवा लूँगा-ताकि सब आराम से रह सकें...'' मनजीत का स्वर दृढ़ था।

बेजी की कड़कती आवाज़ उभरी-''30 साल पहिलां मेरा पुत्तर मैथों खोह लिया, हुन ज़मीना ...., एह सब तेरे कारनामे ने-मेरा मनजीता ऐसा नहीं ए, कन्जरिये।''

मनजीत और मनविंदर सन्न रह गए।

सहनशीलता का दामन छोड़ते ही, शर्म का पर्दा भी हट गया मनविंदर भड़क उठी-''पानी वार कर आप ही ने कहा था-नुएं संभाल मेरे पुत्तर नूँ तेरे हवाले कीता, इसको अमरीका में पक्का करवा देना। डालरां ने तां पिंड दे पिंड अमीर कर दित्ते ने। इसदी कमाई साडी वी गरीबी हटा देवेगी।''

''गरीबी तो हट गई, पर पैसे की गर्मी ने रिश्ते ठंडे कर दिए। इस उम्र में कुफ़र ना तोलें बेजी, रब्ब से डरें, मनजीत आप का सौतेला बेटा नहीं, आप का हिस्सा है, क्यों आप मुझे गालियाँ दे कर मुँह गन्दा कर रही हैं। हम कुछ छीनने नहीं आए, बस आप के दिलों में थोड़ी सी जगह चाहते हैं। सालों से आप के नाम की माला जपने वाला आप का पुत्तर यही रहना चाहता है आप के पास।'' दार जी बिना कुछ कहे उठ गए और उनके साथ ही सब अपने कमरों में चले गए।

कुछ दिन दोनों के लिए बहुत कष्टप्रद रहे। घर में सब ने बोलचाल बंद कर दी थी। मनजीत अपने ही घर में अजनबी-सा बन गया था। मनविंदर का गुस्सा उसकी बेबसी देखकर शांत हो गया था। वह उसके लिए चिंतित हो उठी थी। परिवार के प्रति उसकी भावनाएँ मनविंदर से छिपी हुई नहीं थीं। जानती थी कि कितनी शिद्दत से वह अपने परिवार को चाहता है और उन के व्यवहार ने उसे भीतर तक तोड़ दिया था। वे स्वयं ही खाना बनाते, अकेले खाते, सब उनसे कटे-कटे, दूर-दूर रहते। मनजीत अब भी अपनेप ुरानेब ेजी-दारजीअ ैरभ ाइयोंके सपने लेता। सपना टूटने के बाद करवटें बदलते रात निकाल देता। वर्तमान स्थिति उसे मानसिक तनाव दे रही थी। वह स्वीकार नहीं कर पा रहा था कि माँ-बाप, भाई कैसे इतना बदल सकते हैं ? ज़मीनों ने रिश्ते बाँट दिए थे, जिन पर सरदार मनजीत सिंह ने सारी उम्र मान किया था ... मन और बुद्धि में संघर्ष चल रहा था। कभी मन अर्जुन बन रिश्तों के भावनात्मक पहलू की दुहाई देता और कभी बुद्धि कृष्ण बन हक़ की लड़ाई को प्रेरित करती। अगर रिश्ते आँखों पर पट्टी बाँध लें तो उन्हें खोलना ही पड़ेगा। उसके अन्दर महाभारत का युद्ध चल रहा था। भावनाएँ पाण्डव बन कौरव बने रिश्तों का स्वभाव एवं व्यवहार समझ नहीं पा रही थीं। उसका कसूर क्या था ? रिश्तों को हद से ज़्यादा चाहना-या उस चाहत में सब कुछ भूल जाना और स्वयं को मिटा डालना। सम्बन्धों में लाक्षागृह के जलने से अधिक वह बेजी, दारजी के बदलते मूल्यों और मान्यताओं से आहत हुआ था।

इसीद्वि ंदम ेंव हए कर ातप ानीप ाने उठा,त ान ाचेके क मरेम ेंक ुछह लचल

महसूस की। पता नहीं क्यों शक सा पड़ गया था। दबे पाँव वह नीचे आया तो दार जीके क मरेम ेंफु सफुसाहटअ ैरघ ुटी-घुटी आवाज़ें आ रही थीं।

दोनोंभ ाईद ारज ीक ोक हर हेथ े- ''मनजीते को समझा कर वापिस भेज दो, नहीं तो हम किसी से बात कर चुके हैं। पुलिस से भी साँठ-गाँठ हो चुकी है। केस इस तरह बनायेंगे कि पुरानी रंजिश के चलते वापिस लौट कर आए एन.आर.आई का कत्ल का केस इतना कमज़ोर होगा कि जल्दी ही रफा-दफा हो जाएगा। बेशक अमरीकी सरकार भी ढूँढती रहे, कोई सुराग नहीं मिलेगा। ऐसी अटी-सटी की है।'' यह सुन कर मनजीत का सारा शरीर पसीने से भर गया और वह वहाँ खड़ा नहीं रह सका-

शरीरक ीस ारीऊ र्जाक हींल ुप्तह ो बदन को ठंडा कर गई थी। चलने की हिम्मत नहीं रह गई थी।

अपने आप को घसीटता हुआ वह कमरे में लौटा और बिस्तर पर धड़ाम से गिर गया। मनविंदर की नींद टूट गई, वह उसके कांपते शरीर और चेहरे का उड़ा रंग देख कर बहुत घबरा गई। मनजीत ने बाँई ओर अपने दिल पर हाथ रखा हुआ था।

''सरदार जी, दर्द हो रहा है तो डॉक्टर को...'' मनविंदर ने अपनी बात अभी पूरी नहीं की थी कि मनजीत ने उसका हाथ अपने सीने पर रख लिया- ''दर्दन हीं,ि दलट ूटाह ै,अ पनोंन ेत ोड़ा है। टूटे दिल के टुकड़े सम्भाल नहीं पा रहा हूँ। तेरी बातों को अनसुना कर मैं सारी उम्र तुझे पराई समझता रहा और अब अन्दर तड़फन है। जो सुन कर आया हूँ, क्या वह सच्च है ? जान नहीं पा रहा हूँ कि कौन सी ज़मीन अपनी है ?''

मनविंदर ने अपनी उँगली मनजीत के होंठों पर रख उसे चुप करा दिया। वह बहुत कुछ समझ गई थी और उछल कर बिस्तरस ेन ीचेउ तरी ।स ौष्ठवद ेहय ष्टि वाली मनविंदर ने मनजीत को बांहों में भर कर उठने में मदद की, अपना पर्स उठाया और आधी रात में ही दोनों पिछले दरवाज़े से निकल गये। उनके पाँव के नीचे वही ज़मीन थी। जिसके लिये मनजीत उम्र भर डॉलर भेजता रहा, चारों तरफ़ गहरा काला अन्धेरा था। •

❑

अगला अंक
निकट - अप्रैल 2011

विशिष्ट	जगन्नाथ त्रिपाठी 'शारदेय', एक व्यक्ति : एक रचनाकार - अमरीक सिंह दीप
संस्मरण	राजेश जोशी
कहानियां	से. रा. यात्री, शमोयल अहमद, उर्मिला शिरीष, प्रताप दीक्षित, मधु कांकरिया, वन्दना राग, राजेन्द्र दानी, किरण सिंह
कविताएं	गगन गिल, मंजरी श्रीवास्तव, प्रदीप मिश्र, उत्पल बनर्जी, स्व. श्रीप्रकाश श्रीवास्तव की गज़लें
पुस्तक समीक्षा	'इन्हीं हथियारों से' पर राजेन्द्र राव
अलग सी फिल्में	इश्किया, थ्री इडियट्स
प्रधान सम्पादक की कलम से	भविष्य का परिदृश्य - अशोक कुमार
सम्पादकीय	समय से बात - 5 - कृष्ण बिहारी
आपकी बात, आपके पत्र	

संपादकीय कार्यालय
P.O. Box-52088
ABUDHABI, UAE
Email : krishnatbihari@yahoo.com

▪ **कहानी** – डॉ० उषा राय

खेल

एक लैप टॉप के सहारे उसका खेल चलता रहता है। जहां और जिस शहर में रहता है उससे दूर एक कस्बे में उसके माता-पिता रहते हैं। उसकी एक छोटी बहन है सुरम्या। वह माता-पिता के साथ रहते हुए इण्टर फर्स्ट इयर में पढ़ रही है।

अब गेंद हाथी के बच्चे की बालकनी में थी। बच्चे उसे यही कह कर बुलाते थे। वे सभी मुँह लटकाए खड़े थे। पता नहीं नई चमकीली गेंद का क्या हाल हुआ होगा। अब कोई उपाय नहीं। गेंद तो मिलने से रही। बच्चे कुछ देर तक बालकनी की ओर आंख उठाए खड़े रहे। एक झूठी आशा जब चूर-चूर होती दिख गई तो वे अपने-अपने घर की ओर चले। जिस पार्क में ये बच्चे खेल रहे थे उसी में एक ओर बड़े बच्चे भी खेलनेम`ंम शगूलथ` ाउ न्हेंज बप ताच ला तो हंस दिए। उनकी हंसी ने कहा कि अब बॉल गई हाथ से ...

हाथी का बच्चा बालकनी में बैठा था। बैठे-बैठे ही वह गेंद को उछालने लगा। वह हर तरह से उसके नियंत्रण में थी। नियंत्रण में क्या थी, उसके इशारों पर नाच रही थी। आस-पास बहुत-सी चीजें थीं मगर वह किसी से भी नहीं टकराई। हाथी काब च्चाकु शलि खलाड़ीहै ाव हम ुस्करा रहा है। उसकी ज़िन्दगी में किस्से पर किस्से हैं लेकिन सभी अण्डरग्राउण्ड... जमीन्दोज़क रर खाहै उ न्हेंउ सने ाम जाल है कि गेंद कुछ भी इधर से उधर कर दे...

उसकी ज़िन्दगी में सबकुछ व्यवस्थित है। उसी की तरह ...

जैसे कि वह एक सफल और सेल्फमेड मैन है। वह शेयर मार्केट का सफल खिलाड़ी है। घर के बाहर भी और घर में भी। एक लैप टॉप के सहारे उसका खेल चलता रहता है। जहां और जिस शहर मेंर हताहै उ ससेद ूरए कक स्बेम`ंउ सके माता-पिता रहते हैं। उसकी एक छोटी बहन है सुरम्या। वह माता-पिता के साथ रहतेह ुएइ ण्टरफ र्स्टइ यरम`ंप ढ़र हीहै। कस्बे में जो स्कूल है उसमें वह इण्टर तक ही पढ़ सकती है। इण्टर के आगे पढ़ने की सुविधा कस्बे में नहीं है। शहर जाना पड़ेगा ... खैर वह जब जाएगी तब जाएगी...

अभी तो वह और उसकी पत्नी। उसकी पत्नी सुन्दर है। सुन्दर माने बहुत सुन्दर। विवाह की सालगिरह पर वह पॉर्टी देता है। पहली बार जब वह बीवी को शहर लाया तभी पॉर्टी दी थी। सभी दोस्तों और परिचितों को बुलाया था। उन्हीं दोस्तों में एक उसका जिगरी भी था। सुबोध। वह सबसे बाद में पॉर्टी में पहुँचा था। उसे देखते ही लगा कि उसकी खुशी बढ़ गई है। दोनों गले मिले। उसने सुबोध से शिकायती लहजे में कहा, ''अब आया है तू. ..इ तनीद`रस`. ..च लि मलम ुग्धास` ...'' वह सुबोध को लिए करीब आया। हाथ में बुके लिए हुए एकटक वह मुग्धा को देख रहा था। उसी अवस्था में वह बड़बड़ायाभ ी,' 'क्यि कस्मतप ाईहैय ार ...जी चाहता है देखता ही रहूँ...''

''किसनेम नाि कयाहै. ..द`खतार ह जब तक चाहे...'' सुबोध को मुग्धा के पास छोड़कर वह दूसरे दोस्तों की ओर बढ़ गया था... उसके जीते ही सुबोध ने सीधे उसका नाम लेते हुए कहा,''मुग्धाजी, यार है मेरा...हमारी यारी पक्की है... अपने

वर्ल्ड एडल्ट लिटरेसी कार्यक्रम से सम्बद्ध ाक विताएंअ ौरक हानियांि लखती हैं। चर्चित कहानियों में षष्ठी का नाम इन दिनोंस बकीज़ ाबानप रहै ाब लॉगप रभ ी सक्रिय है। नये कहानीकारों में संभावना जगाता एक नाम। यहाँ प्रस्तुत है कहानी खेल।

सम्पर्क :
65, Awas Vikas Colony,
Mall Evenu Lucknow. U.P.
Mobile -09335466805

उजले-काले दिनों के एक साथ गवाह हैं हम दोनों...''

मुग्धा उसकी बात पर मुस्कराई थी और फिर वह भी दूसरी ओर बढ़ गई थी जहां कुछ और महिलाएं थीं। पार्टी देर रात ख़त्म हुई थी। मगर उस पॉर्टी के बाद सुबोध का उसके घर आना-जाना बढ़ गया था। जब उसका मन होता चला आता। उस पॉर्टी को तो दो साल होने को आए...

एक दोपहर। अभी दोपहर भी नहीं हुई थी। यही कोई ग्यारह का वक़्त रहा होगा। वह नहाकर बालकनी में बैठी अपने केश सुखा रही थी कि सुबोध की आवाज़ ने उसे चौंकाया, ''आप यहाँ छिपी हैं तो घर में कहां दिखाई देंगी... पूरे घर में ढूंढ रहा हूं...'' वह उठने को हुई, ''बैठी रहिए ... वह कम्प्यूटर पर खाने-पीने का पूरा सामान लेकर बैठा है...और बताइए कैसी हैं आप...ऐसे ही चुप रहती हैं या मुझे देखकर चुप हो जाती हैं...?'' उसने सुबोध की ओर देखा। कहा कुछ नहीं। मुस्करा दिया बस। तभी वहीं वह भी आ पहुंचा, ''अरे, तुम दोनों इतने ख़ामोश क्यों बैठे हो ... लड़ाई-वड़ाई तो नहीं हुई ?''

''नहीं, लड़ाई क्यों होगी?'' वह फिर मुस्कराई। उसे और सुबोध को वहीं बालकनी में बैठे छोड़कर वह फिर अपने कम्प्यूटर की ओर बढ़ गया।

''शुक्र है मुग्धा जी कि कुछ बोलीं तो... आपको तो पता है कि हमारी पुरानी दोस्ती है... आजकल वह उदास-उदास रहता है... मैंने आज पूछा तो कहने लगा कि यार, अब बच्चे तो होने चाहिए न...।''

''लेकिन उन्होंने मुझसे तो इस मामले में कभी कुछ नहीं कहा...'' मुग्धा के मुंह से अचानक चौंकते शब्द निकले।

''असल में वह आपसे क्या कहे ... शरमाता है मगर मुझसे नहीं... मुझसे वह कुछ छिपाता नहीं...'' कुछ और बातें करके सुबोध तो चला गया लेकिन जाते-जाते वह मुग्धा के मन में कई सवाल छोड़ गया ...

उजले काले दिनों की दोस्ती ... आपसी गवाही...

वहब ालकनीम`ेंह ाबै`ठीब ालोंक ो सुलझाते हुए मन की उलझनों में थी कि अभी दो साल ही तो हुए शादी को। प्राब्लेम क्या है ? हो जाएंगे बच्चे भी ... तभी सामने के पार्क के बच्चे भी खेलने आ गए थे। वे उसकी बालकनी की ओर देखते हुए चिल्ला रहे थे, ''हाथी का बच्चा ... मोटा गैंडा... तू क्या करेगा बॉल का ... खेलना है तो नीचे आ ... मैदान में आ ... बॉलिंग कर ... बैटिंग कर... न खुद खेलता है और न हमें खेलने देता है...'' बच्चे बिना देखे बोले जा रहे थे कि वह बालकनी में आ गया। उसे देखते ही बच्चे चुप। आख़िर उसे हंसी आ गई। उसने बॉल नीचे फेंक दी। बच्चे खुश हो गए, ''थैंक्यू अंकल.. थैंक्यू... सॉरी अंकल ...''

वह फिर अपने कम्प्यूटर की ओर बढ़ गया। मुग्धा ने उससे कुछ नहीं पूछा बच्चे की बाबत... उस बच्चे की बाबत जो सुबोध कह गया था ... आख़िर वह मुग्धा से क्यों नहीं कुछ कहता कि उसे क्या चाहिए...?

वह घर में रहता है तो चुप रहता है। इतना चुप कि उसकी चुप्पी से डर लगता है। वहन ाराज़-नाराज़ी दखाईद`ता है और यह क्या बात हुई कि जब देखो सुबोध को उसके पास छोड़कर चल देता है... और यह सुबोध इसे तो उसके पास आने का कोई बहाना ढूंढ़ना नहीं पड़ता। मुंह उठाए चला आता है। डर लगता है मुग्धा को ... यह डर पुराना है... यह डर उसके दिल में घर किए हुए है... यह डर उसे बड़े भाई ने दिया है...पुरानी... बहुत पहले की एक घटना उसके दिल में कौंध जाती है ... यह कौंध जब-तब उसकी सिहरन बन जाती है सत्या आया था उसके पास ...... उसके घर आया था....साथ पढ़ता था... बड़ेभ ाईन`ेद`ेखाथ ाकिउ सकेज ातेह ी चीख पड़े थे, ''किसलिए आया था ... बोल ...दुबारा आया तो चीरकर रख दूंगा... टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा ... उसके भी और तेरे भी ....'' उसकी चोटी पकड़कर उसे झटक दिया था ... ज़िन्दगी भर के लिए मुग्धा के मन में एक थर्राहट भर गई। सत्या की आत्मीयता उसके भीतर अपमानित हुई थी...

अब यह सुबोध किसलिए आत्मीयता दिखा रहा है। सत्या की आत्मीयता तो किसी भी स्वार्थ से जुड़ी

नहीं थी मगर यह सुबोध सत्या की तरह निस्वार्थी तो नहीं लगता। हर बार अपने दोस्त का पक्ष लेते हुए उसके करीब होने की उसकी यह कैसी कोशिश है....क्यों है...?

उसि दनभ ीत ो,ज़ यादाि दनभ ीत ो नहीं हुए जब सुबोध घर में आया तो वह घर में ही था। उसके घर में होने न होने का सुबोध पर कोई फर्क ही नहीं पड़ता। सीधे उसके पास किचेन में आ पहुंचा और बिना किसी हिचक के उसकी लटों को संवारते हुए बोला, ''किचेन में उलझी हुई हैं, क्यों ? और यह मेरा दोस्त आपकी परवाह ही नहीं करता। इसलिए तो मुझे आपकी चिन्ता रहती है...'' और उसके बाद तो वह बिल्कुल ही अनौपचारिक हो गया। अपनी हथेलियों में उसने मुग्धा का चेहरा भरते हुए कहा, ''मेरा दोस्त बहुत अच्छा है ... ऊपर से कड़ा पर अन्दर से मुलायम दिल का है... बच्चे की चाह उसकी है... आप में कोई कमी नहीं है... कमी उसमें है... मैं जानता हूं ... हम उजले-काले दिनों के साथी हैं ... उसी ने बताया है मुझे...''

मुग्धा ने सुबोध की हथेलियों को परे हटाया। मुक्त करा लिया खुद को सुबोध से। और उधर एकालाप-सा कर रहा है, ''मैं आपको चाहने लगा हूं... न जाने क्यों...अ ापकोज बप हलीब ारद ेखाथ ा तभी..., तभी लगा कि आपको देखता रहूं... उसे पता है कि मैं आपको चाहता हूं... नियोग समझती हैं न आप ... नियोग से सन्तान...'' मुग्धा सन्न रह गई। किचन की गरमी से तो उसे उस वक़्त तक पसीना नहीं हुआ था लेकिन सुबोध के वाक्यों ने कुछ ऐसा किया कि जैसे वह शीशे की हो और छन्न से टूटकर टुकड़े-टुकड़ेह ोग ईह ो।उ सकाव जूदप ारेक ी तरह बिखर गया हो। उसने अपने माथे पर छलक आई पसीने की बूंदों को आंचल के हवाले किया और बोली, ''आप यहां से जाइए...''

सुबोध तो हट गया वहां से उसी वक़्त पर न जाने मुग्धा कितनी देर तक अकेली ही वहां बैठी रही थी...

और फिर उस रात...

उस रात जब वह बिस्तर पर थी, ''लगता है मेरा दोस्त तुम्हें भा गया है...'' उसने कहा।

''कैसी बात करते हैं आप छिह...'' मुग्धा चौंकी और घबराकर बोली। बरसों पुराने डर ने नाग की तरह फन उठाया था जैसे।

''मैं कैसी बात करूंगा... मैंने कई बार देखा है कि उसके साथ बातें करते हुए तुम मौन अपना लेती हो...

मौन ही तो प्यार की स्वीकृति है...''

''प्लीज़... भगवान के लिए... भगवान की कसम...मेरे मन में ऐसा कुछ नहीं है...आप मेरा भरोसा कीजिए...'' मुग्धा की आंखों से आंसू टपकने लगे और वह दूसरी ओर मुंह करके सो गया...

सुबह जब मुग्धा ने अपने चेहरे पर पानी के छींटे डाली तो दंग रह गई। आंखें गड्ढे में चली गई थीं और पपोटे सूज गए थे। शायद सारी रात रोई थी। मगर उस पर... उस पर कोई असर नहीं दिखा। जैसे रात जो कुछ उसने कहा वह मुग्धा से नहीं किसी और से कहा हो। या शायद कहा ही नहीं किसी से। बिल्कुल सामान्य। और सामान्य बातें करके वह हर दिन की तरह अपने काम पर निकल गया। उसके जाने के बाद मुग्धा ने घर के कुछ काम निपटाए। अपने लिए चाय बनाई और अख़बार के साथ बालकनी में आकर बैठी। अखबार की हेड लाइन थी...

'मुम्बई में देश का सबसे बड़ा लम्बा पुल... लम्बाई छह किलोमीटर... इस पुल पर सौ किलोमीटर की रफ़्तार से जाया जा सकता है...' वह सोचने लगी शादियां पुलों की तरह क्यों नहीं होतीं। यदि ऐसा होतात ोस मस्याओंक ाग रजतीन दीक ो भी दिल के पुलों से पार किया जा सकता था। तन और मन के बीच भी काश कोई पुल होता। कहां होता है ऐसा ? जब देखो दोनों छत्तीस के आंकड़ों से दिखते हैं और यह नया प्यार ? कैसा प्यार ? किसका प्यार? प्यार शब्द आते ही वह कांपज ातीह ै।उ सेब ड़ाभ ाईय ादअ ाता है। यह पति याद आता है। वाह रे भाई ... वाह रे पति... न तन का पुल पार किया न मन का... बच्चा चाहिए... ये लोग औरत को समझते क्या हैं ? मदर डेयरी का बूथ ... सिक्का डालो और रोप लो बरतन में। उसकी नज़र गेंद पर टिक गई। वह पैरों से खेली जा रही थी। कभी ऊपर आसमान की ओर जाती दिखती तो अगले ही पल ज़मीन पर आ जाती। गेंद की वही नियति है जो उसकी है...

उसने खुद को नियति के हवाले छोड़ दिया है। दिन बीत रहे हैं। सुबोध का आना-जाना उसी तरह है। घर के कामों को निपटाकर वह अब भी कभी-कभी बालकनी में खड़ी हो जाती है। मैदान में खेल चलता रहता है। कभी-कभी खेल का रूख बदल जाता है। हारने वाली टीम जीतने लगती है। बस धैर्य और कौशल न छूटे। यह खेल बहुत पुराना है। यह खेल न जाने कब तक चलता रहेगा। इसी तरह, वह सुबोध और उनके बीच मुग्धा। नहीं, मुग्धा, मुग्धा यानी वह... वह खेल में तो है मगर उसकी हैसियत किसी गेंद से ज़्यादा है...◆

❑

▪ कहानी – अर्चना पेन्यूली

एक सुबह आप्रवासन कार्यालय में ...

एकाएक मेरी दृष्टि फिसलते हुये अपने दायें तरफ दूर फोयर के पास एक कोने पर जा पड़ी। वहाँ खड़ा एक आदमी मुझे ताक रहा था और मुझसे दृष्टि मिलने पर भी उसने अपनी नजरें नहीं हटाई। पहले मुझे सभी गोरे एक से लगते थे। एकरूप। लेकिन अब डेनमार्क में अपने पाँच वर्षों के आवासकाल में मैं उनमें भेद करना सीख गई थी।

दिसम्बर का महीना.....। सुबह के आठ बज रहे। कोहरे से भरा आसमान, कोपनहेगन की हर सड़क, गली में शीत ऋतु की बर्फीली ठंडी हवा बह रही। जैकेट, टोपी व दस्तानों से लदी ठिठुरते हुए मैं डेनिश इमीग्रेशन सर्विस ऑफिस पहुँची, कुछ अनमने भाव से। कुछ जगहें ऐसी होती हैं कि वहाँ जाने का बिल्कुल मन नहीं करता। हालांकि डेनमार्क के आप्रवासन कार्यालय का मेरा अभी तक का अनुभव इतना कड़ुवा नहीं था कि यह धारणा बन जाये। लेकिन जैसे ही शंकर, मेरे पति मुझे याद दिलाते कि हमारे लिये वीसा रिन्यू करवाने का समय आ रहा है, मुझेए कक ेफ्तह ेज ाती ाउ सप्रक्रियास` गुजरते हुए मुझे हर बार इस बात का आभास होता कि मैं यहाँ एक अप्रवासी हूँ – दूसरे मुल्क से आयी हुई यहां।

जिस हिसाब से शंकर की नौकरी का कॉन्ट्रेक्ट बढ़ता, उस हिसाब से हमारी इस देश में आवास की अवधि बढ़ती। हमारे पासपोर्ट में मुहर ठोकने वाला अधिकारी चाहे कोई भी होता उसके चेहरे पर ऐसे भाव रहते जैसे यह देश हम पर कितना अहसान कर रहा है। न चाहते हुए भी हम उसके प्रति कृतज्ञता से भर जाते। दो-तीन बार उसे जोर से 'थैंक्यू' कहते। आप्रवासन कार्यालय से बाहर निकल कर खुले क्षितिज की तरफ देखते हुये इत्मीनान की सांस भरते कि चलो यहाँ, इस आसमां तले दो साल और रहने की इजाजत मिल गई है।

पिछली बार जब वीसा अधिकारी ने हमारे पासपोर्टो पर मुहर ठोकी तो वह शंकर से बोला, ''आपका व बच्चों का वीसा दो साल के लिये लग गया है। मगर आपकी पत्नी को आठ महीनों बाद यहाँ फिर आना पड़ेगा। उनका पासपोर्ट एक्सपायर हो रहा है।''

इस देश में मेरी पहली पहचान मेरा पासपोर्ट है। यहाँ मनुष्यों का मूल्यांकन उनकी प्रतिभाओं के आधार पर कम, उनके पासपोर्टके अ ाधारप रज्‍ यादाह ोताह ै कि वह किस देश का नागरिक है। खैर डेनिश इमीग्रेशन सर्विस ऑफिस ने मुझे याद दिलाया कि मेरा पासपोर्ट एक्सपायर हो रहा है। सो अपनी इंडियन एम्बेसी जाकर पहले मैंने अपना पासपोर्ट रिन्यू करवाया। जैसे ही भारतीय दूतावास से मेरा नया पासपोर्ट बन कर आया, दूसरी सुबह तड़के ही मैं उडलेन्डिगेर्स्टुल्सन – इमीग्रेशन सर्विस ऑफिस के लिये निकल पड़ी, वीसा लगवाने।

मेरे पहुँचने से पहले ही कार्यालय ठसाठस भर चुका था। मैंने नंबर लिया तो पर्ची पर 189 अंकित था। इसका मतलब मुझसे पहले इतने लोग कतार में थे। क्या लोग यहाँ रात में आकर ही बैठ जाते हैं ? मैंने बुदबुदाते हुए एक गहरी सांस भरी और लोगों के बीच एक खाली कुर्सी ढूंढते हुए बैठ गई। अगल-बगल अपने से लगभग

1987 से लेखन में सक्रिय।
हिन्दी एवं अंग्रेजी में लेखन। परिवर्तन उपन्यास और सैकड़ों अन्य रचनाएं प्रकाशित।
सम्पर्क :
archana@ webspeed. dk

सटे बैठे लोगों को यूं ही निहारने लगी। सहसा मुझे लगा कि मैं एक ग्लोब में आ बैठी हूँ। चारों तरफ दुनिया के तमाम द्वीपों के लोग मुझे घेरे हुए हैं – पश्चिम देशीय, सुदूर पूर्वी देशीय, अफ्रीकन, मध्य-पूर्वी, इस्लामी .....। सभी के हाथों में अपने-अपने देश के पासपोर्ट – नीले, हरे, सफेद, सलेटी, कत्थई .....। सभी के चेहरों पर खिन्नता, एक बेजारगी, जैसे कोई भी यहाँ आना नहीं चाहता लेकिन उनकी विवशता उन्हें घसीट लाती है।

बहरहाल मुझे इमीग्रेशन ऑफिस में होने वाली इन्तज़ारी का अनुभव पहले से था। अत: अपने साथ एक किताब ले गई थीप ढ़नेके िलए– ड ा.अ ब्दुलक लाम की आत्मकथा, विंगस ऑफ फायर। पर्स से किताब निकाल कर पढ़ने लगी। आदत के मुताबिक रह-रह कर मेरी नजरें किताब से उठती व अपने आस-पास बैठे लोगों पर तन जाती। मैं उनकी वेशभूषा निहारती, उनके चेहरे के भावों को पढ़ने की कोशिश करती। कुछ लोग एकदम मूक, कहीं शून्य में ताकते हुए अपने विचारों में खोये। कुछ अखबार पढ़ रहे। कुछ संग आये साथी से बतिया रहे। कुछ नेत्र मूंदे झपकी ले रहे। दो-चार लेप्टॉप पर काम कर रहे, जैसे समय का सदुपयोग करने की उन्होंने ठानी हो। एकाएक मेरी दृष्टि फिसलते हुए अपने दायें तरफ दूर फोयर के पास एक कोने पर जा पड़ी। वहाँ खड़ा एक आदमी मुझे ताक रहा था और मुझसे दृष्टि मिलने पर भीउ सनेअ पनीन जरेंन हींह टाई।प हले मुझे सभी गोरे एक से लगते थे। एकरूप। लेकिनअ बड ेनमार्कम ेंअ पनेप ाँचव र्षों के आवासकाल में मैं उनमें भेद करना सीख गई थी। नैन-नक्श, बालों-त्वचा का रंग, कद-काठी उनके सम्पूर्ण स्वरूप कोद ेखक रम ैंस रलतास ेअ ंदाजाल गा लेती थी कि वह स्केन्डिनेविन है या फिर जर्मन, इटालियन, स्पेनिश, ब्रिटिश, अमेरिकन या दक्षिणी अमेरिकन है .....।

वैसे यह बात स्पष्ट थी कि वह यूरोप संघीय, यानी इयू सीटिजन नहीं था। इयू के नागरिकों को आप्रवासन कार्यालय में आने की क्या आवश्यकता ? वो अपने इयू नियमों तहत एक यूरोपीय देश से दूसरे यूरोपीय देश पूरी आजादी से विचरण कर सकते हैं। जहाँ चाहे नौकरी कर सकते हैं, घर बसा सकते हैं।

तो फिर वह अमेरिकन..... लेकिन वह उत्तरी अमेरिकन नहीं लग रहा था। बाल उसके कुछ काले से थे। चेहरे का रंग भी दबा था। हाँ, मूलत: वह किसी दक्षिणी अमेरिकन देश का होगा, शायद हिसपेनिक या लेटिनो! मन ही मन मैं सेन्ट्रल व साउथ अमेरिकन देशों के नाम गिनने लगी, मेक्सिको, ब्राजील, अर्जनटीना, चिली, पेरू, वेनूजूला, कोलम्बिया ....।

अरे मैं यह क्या कर रही हूँ ? मैंने खुद को धिक्कारा। वह चाहे किसी भी देश का हो, मुझे क्या। मैंने नजरें फिर किताबप र िटकाद ीं।म गरद ो-तीनप ेज पढ़ने के बाद मेरी नजरें फिर अपने चारों तरफ के माहौल का मुवावना करने लगी। डीजिटल साइन बोर्ड अभी 52 नंबर ही दिखार हाथ ा।म ेरान ंबर1 89थ ा।प ाँच काउन्टर होने के बाबजूद कतार इतने आहिस्ते आगे खिसक रही थी। मैंने काउन्टरोंप रन जरफे री-पांचोंप रअ ौरतें बैठी थी। दो जवान, तीन अधेड़, सभी गंभीर मुखमुद्रा लिये। मन ही मन मैं मनाने लगी, भगवान मुझे वह काउन्टर मिले जिस पर कोई जवान औरत बैठी हो,अ धेड़न हीं।य ेड ेनिशअ धेड़अ ौरतें इतनी चिड़चिड़ी, कुण्ठित हैं कि सीधे मुंह किसी से बात नहीं करतीं, इमीग्रेन्टस (तीसरेम ुल्कोंस ेअ ाये)स ेत ोि बल्कुल नहीं।

क्यों हम इस स्केन्डिनेविन देश में रहने चले आ गये ? कितना ठंडा व उदास मुल्क है यह! अपना हिन्दुस्तान कोई बुरा थोड़ी ही था। कोफ्त में मैंने कुछ लंबी-लंबी सांसें भरी। नज़र अनायास ही फिर उस कोने पर चली गई। वह आदमी अब भी वहाँ खड़ा था। दरवाज़े के बाहर फोयर में जाकर उसने एक सिगरेट सुलगा ली थी। परदर्शी शीशे से मुझे घूर रहा था।

दिस इज टू मच! वह क्यों मुझे ऐसे घूर रहा है, मुझे अब हैरत होने लगी। मैंने अपने कपड़ों का निरीक्षण किया कि कहीं मेरी पोशाक उसका ध्यान मेरी तरफ खींच रही हो। मैने कथई रंग का गर्म सलवार कमीज पहना था पर ऐसी कोई बात नहीं थी कि वह आदमी मुझे इस तरीके से घूरे। मैने चुपके से अपने पर्स से छोटा सा आईना निकाल कर अपनी शक्लभ ीत ाकी ि कक हींम ेरीश ाक्लप र कोई ऐसी बात ....। वह भी ठीक-ठाक, मतलब जैसी थी वैसी। खैर किसी की आँखों पर हम पट्टी थोड़े ही लगा सकते हैं। वह घूर रहा है तो घूरने दो.....।

मैंने नजरें फिर किताब पर टिका दीं और इस बार पूरे तीन पेज बिना दृष्टि उठाये पढ़ लिये। दिलचस्प किताब थी। मज़ा आ रहा था, एक कस्बे के मामूली परिवार में जन्में मुसलमान लड़के की कथा पढ़ने में जो आगे चल कर एक

दिलचस्प किताब थी। मज़ा आ रहा था, एक कस्बे के मामूली परिवार में जन्में मुसलमान लड़के की कथा पढ़ने में जो आगे चल कर एक हिन्दू बहुमत देश का राष्ट्रपति बना। पहली बार मुझे अब्दुल कलाम का पूरा नाम पता चला —अवुल पकीर जेनुलाबदीन अब्दुल कलाम।

हिन्दू बहुमत देश का राष्ट्रपति बना। पहली बार मुझे अब्दुल कलाम का पूरा नाम पता चला – अवुल पकीर जेनुलाबदीन अब्दुल कलाम। साथ ही मुसलमान समुदाय की जानकारी मिल रही थी। हिन्दु मुसलमानों के पारस्परिक रिश्ते समझने की अन्तर्दृष्टि मिल रही थी। लेकिन तीसरे पेज पर थी कि नज़र फिर इधर-उधर ताकने के लिये बैचेन हो गई। वैसे भी ऐसे में ध्यान लगाना मुश्किल हो जाता है जब हम जानते हैं कि कोई हमें घूर रहा है। मेरी नज़रे किताब छोड़कर फिर आस-पास के वातावरण को टटोलने लगीं। मेरे सामने बैठा चीनी युग्ल चला गया था। उनकी जगह एक इस्लामी युग्ल बैठ गया था, अपने चार बच्चों के साथ। पत्नी के चेहरे पर बुरके का पर्दा ज़रा सा हटा हुआ था। उसकेअ ाधेउ ज्वलच ेहरेस ेउ सकेरू प की गज़ब की सुन्दरता व्यक्त हो रही थी। ये मध्य-पूर्वी, खाड़ी की औरतें कितनी खूबसूरत होती हैं ! क्यों ये अपनी सुन्दरता पर्दे में छिपाये रहती हैं ? वह अपने सबसेछ ोटेब च्चेक ेग ोदीम ेंि लयेब ैठी थी। पति के हाथों में छः पासपोर्टों का गट्ठर था। चेहरे पर वही मायूसी के भाव....।

बगल में जो अफ्रीकन परिवार बैठा था, वह भी उठ गया था। उनकी जगह अब एक माँ-बेटी आकर बैठ गयी थी। किसी दक्षिणी यूरोपीय मुल्क के लग रहे थे – रोमानियन, बुल्गारियन जैसे। मेरी नजर फिसलते हुये हठात फिर उस कोने पर चली गई। वह बेशरम आदमी अब भी वहीं खड़ा मुझे ताक रहा था। अब उसकेह ाथोंम ेंि सगरेटक ेब जायेक ेक की बोतल थी। कोक गटकते हुए वह मुझे देख रहा था – एकटक। अरे हद हो गई! माना की आँखें तुम्हारी अपनी हैं लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं कि तुम किसी पर भी गड़ा लो। मुझे गुस्सा आने लगा। दुनिया कैसे बेतुके लोगों से भरी है। मैंने उठ कर अपनी जगह बदल ली। जितनी दूर उससे जाकर बैठ सकती थी,ब ैठग ई,थ ोड़ाए कख म्बेक ेिअ ाड़ मेंत ाकिउ सकीन जरम ेंन अ ाऊं ाउ सने भीत ुरन्तअ पनाप ैंतराब दर्ला लया ाउ स कोने से हट कर दूसरे कोने पर चला गया, जहां से उसकी नज़र मुझ पर स्पष्ट पड़ सकती थी।

एक बात सच कहूं..... वह मुझे चिढ़ार हाथ ा,म गरम नम ेंए कक ुतूहल भी पैदा कर रहा था। बहुत दिनों बाद आज कोई मुझे ऐसी नजरों से, ऐसी जिज्ञासा से एकटक निहार रहा था। परदेसी मुल्क में एक नये कारवें के बीच अपना अस्तित्व और भी तुच्छ लगता था। आज कोई मुझे जतला रहा था कि मैं कुछ हूँ। वह हैण्डसम था। उसने एक स्मार्ट जैकेट पहनी हुई थी। पैरों पर कसे काले स्नो सूज। वाह ....। मुझे थोड़ा अफसोस होने लगा कि घर से निकलने से पहले मैंने क्यों नहीं कोई अच्छी फैशनेबल ड्रेस पहनी, चेहरे पर मेकअप क्यों नहीं लगाया, कानों में झुमके क्यों नहीं लटकायें। पहली बार मुझे महसूस हुआ कि हम कहीं भी, कितनी ही अनजान या महत्वहीन जगह पर जाए अपने परिधान पर हमेशा ध्यान दें। पता नहीं क्या दिलचस्प बात वहाँ हमारा इन्तज़ार कर रही हो।

इन तर्क-वितर्कों को अपने मस्तिष्क से परे झटकते हुए मैं किताब खोल कर फिर पढ़ने लगी। इस बार मैंने सचमुच किताब से नजरें नहीं हटाई जो अध्याय पढ़ रही थी वह पूरा खतम कर दिया। दूसरे अध्याय के भी तीन पेज पढ़ लिए। राष्ट्रपति, मिसाइल मेन, डॉ० अब्दुल कलाम के बचपन, छात्र जीवन व जीवत-वृत्ति की झांकी मिल रही थी। लेकिन यकायक एक शेर उत्पन्न हुआ और मेरी एकाग्रता फिर भंग हो गई। एक आदमी, जो दिखने में अपना हिन्दुस्तानी भाई लग रहा था, इमीग्रेशन काउन्टर नंबर तीन पर बैठी औरत पर कस कर चिल्ला रहा था। उसके साथ एक पुराने डिज़ाइन का ढीला-ढाला सलवार-कमीज पहने एक बूढ़ी औरत खड़ी थी।

''रिफ्यूजी नहीं हूँ यहाँ....। नौकरी करता हूँ। सरकार को पूरा टैक्स भरता हूँ। जितना इस देश से ले रहा हूँ बदले में कई गुना लौटा रहा हूँ,'' वह गुर्रा रहा था।

सभी काउन्टरों पर बैठे व पीछे काम करर हेइ मीग्रेशनअ धिकारीख ामोशथ े। अन्य लोग हतप्रभ तमाशा देख रहे थे और वह बूढ़ी औरत युवक को शान्त करवाने का असफल प्रयास कर रही थी। ''गुस्सा न कर पुत्तर। मैं अपने पंजाब चली जावांगी। मुझे नहीं रहना इस मुल्क में।''

''बीमार है मेरी माँ .....। कैसे उन्हें वापस भेज दूं ? मैं उनका अकेला लड़का हूँ। मेरी माँ मेरे पास नहीं रहेगी तो कहाँ रहेगी ?''

''गुस्सा न कर पुत्तर। मैं अपने पंजाब चला जांवागी। मुझे नहीं रहना इस मुल्क में,'' वृद्धा ने फिर समझाने की चेष्टा की।

मगर बेटा उस इमीग्रेशन अधिकारी से बहस में इस कदर उलझा था कि अपनी माँ की बात पर ध्यान देने का उसे होश नहीं था। वृद्धा ने हताशा से इधर-उधर ताका। फिर मेरे पास आकर बैठ गई। शायद मेरे रंगरूप में उन्होंने अनुमान लगा लिया कि मैं भी उन्हीं की तरह भारतीय हूँ। ''ये लोग भी बड़े अजीब हैं!'' वह मुझसे बोली। ''मेरे बेटे को यहाँ रख लिया और मुझे रखने में इन्हें दिक्कत है। माँ पहले आती है कि बेटा?''

मैं उनके सरल तर्क पर मुस्कुरा पड़ी। उनके सफेद बाल व लटकी त्वचा को देखते हुए मन ही मन बोली-आपका बेटा जवान है। इन्हें जवान लोगों की ज़रूरत हैं। आप जैसे बूढ़े असाध्य लोगों का ये क्या करेंगे ? आप लोग तो यहाँ की सरकार पर सिर्फ एक बोझ ही होंगें। वैसे ही यह देश बूढ़ों से भरा है।

एकाएक फिर हल्का-सा हुआ और मेरीन जरव ृद्धास ेउ ठकर िफरक ाउण्टर नंबर तीन पर चली गई। अब युवक के बजाये वह औरत तैश में नज़र आ रही थी ात ेजस् वरव स धेश ाब्दोंम ें य ुवकस े बोल रही थी, ''हम कुछ नहीं जानते कि कहां तुम्हारी माँ रहेगी। यहाँ तुम्हारे पास रेजीडेण्ट परमिट है, तुम्हारी माँ के पास नहीं। तुम्हारी माँ का टूरिस्ट वीसा एक्सपायर हो रहा है ....। उन्हें यहाँ से जाना होगा। सी हेज टू लीव दिस कण्ट्री।''

डेन्स (डेनिश लोग) अगर किसी बात के लिये 'न' कहते है तो वह वाकई 'न' होता है। खैर वह युवक और भी भड़क गया। हाथ लहराते हुए उनकी संस्कृति पर आक्षेप लगाने लगा। कोई मुल्क चाहे कितना ही विकसित हो उसके कुछ कमजोर पहलू होते हैं। वह उन्हीं पर प्रहार कर रहा था, ''हम वृद्धाश्रम नहीं भेजते अपने माता-पिता को। अपने पास रखते हैं। तुम लोग क्या जानो माता-पिता की सेवा क्या होती है।'' वह अपनी आँखे मुझ पर व मुझ जैसे दिखने वालों पर फिराते हुये पंजाबी मिक्स हिन्दी में बोला, ''तभी तो यहाँ के लोग बच्चे पैदा नहीं करते। उन्होंने देख लिया कि बच्चे उनके किसी काम के नहीं। इनको पैदा करके बड़ा करना बेकार है।''

''हो हो....'' कुछ लोग, जो उसकी जुबान समझ करते थे जोरों से हंसने लगे।

एक कटु मुस्कान हंसते हुए वह अपनी माँ को लेकर कार्यालय से बाहर निकल गया।

एक निस्तब्धता छा गई। मैं उन्हें तब तक देखती रही जब तक कि वे मेरी नज़रों से ओझल न हो गये। एक लंबी सांस भरते हुए मैंने सामने डीजिटल साइन बोर्ड की तरफ देखा – बोर्ड अब 102 नंबर दिखाने लगा था। अभी भी एक लंबी इन्तजारी थी। न चाहते हुए भी मेरी नज़रें घूम कर फिर उस कोने पर चली गई। वह आदमी अब भी वहाँ खड़ा मुझे ताक रहा था। लेकिन इस बार जैसे ही हमारी निगाहें मिली वह लंबे-लंबे पग भरते हुये मेरी तरफ आने लगा। मैं उसे अपनी तरफ बढ़ते हुये देखने लगी, हतप्रभ कि वह मुझसे क्या चाहता है। वह मेरी तरफ क्यों चला आ रहा हे ? देखते ही देखते वह मेरे एकदम करीब आ गया -सिर्फ बांह भर की दूरी पर। उसके आफटर शेव लोशन की गंध मेरे नथुनों में भरने लगी। मैंने उसे प्रश्नात्मक दृष्टि से देखा। उसने नरम स्वर में मुझसे पूछा, ''आर यू ऑलराइट ?''

''क्यों मुझे क्या हुआ ?'' मैंने असमंजस में उससे पूछा।

''मैं आपको बड़ी देर से देख रहा हूँ। आप बड़ी दुखी व परेशान दिख रही हो। मैं आपकी कोई मदद कर सकता हूँ ?''

''ओ मिस्टर, न तो मैं दुखी हूँ और न ही परेशान हूँ। सिर्फ लंबी इन्तजारी से बोरियत आ रही है। ''

''नहीं, आप बहुत परेशान दिख रही हो। मैं आपको बहुत देर से देख रहा हूँ। आपकोम ैंनेफ ोयरम ेंन ंबरल ेकरअ न्दर घुसते हुए देखा, आपको बैठते हुए देखा, फिर आपको जगह बदलते हुए देखा। आप किताब के पन्ने पलटने में लगी हैं। आपअ शान्तह ैं ।ट ेन्शडह ैं ।क याब ातह ै जो आपको बैचेन कर रही है। कह देने से आपका मन हल्का हो जायेगा।''

न चाहते हुये भी मेरी नज़रें घूम कर फिर उस कोने पर चली गई। वह आदमी अब भी वहाँ खड़ा मुझे ताक रहा था। लेकिन इस बार जैसे ही हमारी निगाहें मिली वह लंबे-लंबे पग भरते हुये मेरी तरफ आने लगा।

वह एक मिष्टभाषी था। आवाज सुमधुर। लेकिन मुझे अन्जान लोगों की सहानुभूति की कतई जरूरत नहीं थी। मुझे उस पर गुस्सा आ गया। सख्त शब्दों में बोली, ''मैं बिल्कुल ठीक हूँ, मिस्टर। यह ऐसी जगह नहीं कि कोई यहाँ चहके।''

वह हल्के से हंसा। ''आप सही कह रही हैं।'' चारों तरफ नज़रें घुमाते हुए वह बोला। ''सच, बड़ा लंबा इन्तजार है यहाँ। मेरा किसी इमीग्रेसन ऑफिस का यह पहला अनुभव हैं। यहाँ परसों ही पहुँचा हूँ। यहाँ की माइकोशॉफ्ट कंपनी ज्वाइन की है। चिली में था तो वहाँ एक संस्था चलाता था, दुखी व परेशान लोगों के लिये। हम योगा व मेडीटेशन करते थे, साथ में गॉड की बहुत सारी प्रेयर्स। कितने ही डिप्रेशड लोग हमारी संस्था में ठीक हुए।'' हथेली में अपना पासपोर्ट मारते हुए वह कहने लगा, ''एक बार यहाँस ेटेल्डह ोज ाऊँत ोय हाँभ ी िचली जैसी संस्था चलाउंगा,'' कहते हुए वह मुझे ऐसे भाव से देखने लगा जैसे मुझे उसकी संस्था की नितान्त आवश्यकता है।

मैं बेरूखी के भाव से बोली, ''आपको गुड लक। लेकिन मैं आपकी संस्था को ज्वॉइन करने वाले लोगों में से नहीं हूँ।''

''बायदवे आप कौन से देश की है ?'' मेरे चेहरे का सूक्ष्म निरीक्षण करते

हुए उसने एकाएक पूछा।

''इंडिया।''

''ओह, अब मैं आपके टेन्शन का कारण समझ गया। यू आर फ्राम इंडिया! हाउ सप्रेस्ड आर इंडियन वूमेन!''

''यह बिल्कुल गलत है,'' मैंने तुरन्त उसके वक्तव्य का खंडन किया। ''यह आप लोगों को इंडिया के विषय में क्या-क्या गलतफहमियां हैं।''

''चिली में कुछ महीने पहले मैंने इंडिया के ऊपर एक डाक्यूमेंट्री फिल्म देखी थी। इडिंयन वूमेन्स आर वेरी इनसिक्योर डियर। उसके लिये वहाँ कोई भीज गहस ुरक्षितन हींह ै।य हाँत कि क माताओं की कोख भी अब उनके लिये सुरक्षित नहीं रही। लोगों को जब पता चलता है कि उनके पेट में फीमेल एमब्रियो है तो वो एबोर्ट करवा देते हैं।''

अपने देश की काफी बातों के सम्बन्ध में मैं स्वयं अनभिज्ञ थी। उसके कथन में कितनी सच्चाई थी, मैं नहीं जानती थी। मैं तटस्थ भाव से उससे बोली, ''मेरे घर या परिवेश में ऐसा नहीं होता। मैं स्वयं दो लड़कियों की माँ हूँ।''

''आप हिन्दू हैं ?''

''हाँ मैं हिन्दू हूँ।''

मेरे माथे को घूरते हुये वह पूछने लगा, ''आपके माथे में वह निशान कहाँ हैं ?''

''कैसा निशान ?''

उंगुली को गोल-गोल घुमाते हुए वह कहने लगा, ''वह निशान जो हिन्दू लड़कियों के माथे पर उनके पैदा होते ही खुदवा दिया जाता है।''

वह बिन्दी के लिये कह रहा था। मैं उससे बोली, ''उसे बिन्दी कहते हैं, जनाब। पर मैंने नहीं लगाई। जब मर्जी होती है तो लगा लेती हूँ, जब नहीं होती तो नहीं लगाती।''

''क्या वह एक परमानेंट मार्क नहीं होता ?'' पूछते हुए वह मेरे बगल में खाली पड़ी कुर्सी पर बैठ गया।

''नहीं, बिल्कुल नहीं। आप जिस देश में कभी गये तक नहीं, वहाँ के विषय में इतनी गलत जानकारी क्यों रखने लग जाते हो,'' मैं हैरान होते हुए बोली। ''आपने इन्दिरा गाँधी का नाम सुना होगा ?''

''ओह यस-हिस्ट्री-मेकिंग वूमन। सी वाज गेन्धीस डॉटर''

''नहीं, वह नेहरू की लड़की थी.....।''

उसने उपहास वाले भाव से मुझे इस तरह देखा जैसे मैं कितना अल्प ज्ञान रखती हूँ। फिर वह मुझे मेरे देश का इतिहास समझाते हुए बोला, ''इन्दिरा गेन्धी! गेन्धी..... सी बाज गेन्धीस डॉटर।''

''इन्दिरा गाँधी के पिता जवाहर लाल नेहरू थे,'' यह संक्षिप्त वाक्य बोल कर मैं तुरन्त दूसरी बात पर आ गई, क्योंकि मेराम कसदउ सेय हब तानेक ान हींथ ा कि इन्दिरा गाँधी नेहरू की लड़की थी या गाँधी की। ''आपकी जानकारी के लिये यहाँ के भारतीय दूतावास में आजकल एंबेसडर एक महिला है – श्रीमती नीलम देव,'' मैं थोड़े गुरूर से बोली।

''अच्छा,'' उसने थोड़ा आश्चर्य प्रकट किया।''लेड़ी एंबेसडर।''

''यस''। मैं इन दो उदाहरणों को आधार बनाते हुए उससे तर्क करने लगी, ''भारतीयम हिलाएंउ न्नतिके इ तनेऊ ंचे शिखर पर पहुँच गई हैं। प्रधानमंत्री, एंबेसडर, डाक्टर, इंजीनियर, राइटर..... पता नहीं क्या-क्या बन गई हैं वह। आप कैसे कह सकते हैं कि भारतीय महिलाओं की स्थिति बड़ी दयनीय है। उनका उन्मूलन हो रहा है।''

''आप शायद सही कह रही हैं। दरअसल बहुत देर से यहाँ खड़ा-खड़ा बोर हो रहा था। आपके चेहरे पर भी उलझन व झुझंलाहट के भाव देख कर आपकी तरफ बढ़ गया बात करने के लिए। समय अच्छा कट गया। नाइस टॉकिंग टू यू। पहली बार मैने किसी इंडियन लेड़ी से बात की है। आपने अपने देश की औरतों के सन्दर्भ में जो कुछ भी बताया मुझे बहुत अच्छा लगा वहस बज ानकर ाम ुझेव ास्तवम ेंक ाफी गलत जानकारियां थी। मैं समझता था कि भारतीय महिलाओं की हालत ही वैसे ही खराब है जैसे अफगानिस्तान में है।''

डीजिटल साइन बोर्ड अंक 150 दिखाने लगा तो वह चहके स्वर में बोला, ''माय नंबर....।'' लपक कर वह काउण्टर नंबर दो की तरफ बढ़ गया। मुझे बॉय तक भी उसने नहीं कहा।

उसकी अब पीठ मेरी तरफ थी। मेरा सारा आक्रोश-क्रोध एकदम शान्त हो गया, ठंडी राख की तरह। अपनी जगह बैठे मैं मनन करने लगी थी कि क्या मैंने उसेस बक ुछस हीब ताया ाक याव ास्तव में भारत में सभी महिलाओं की स्थिति संतोषजनक है ? क्या सचमुच भारत में कन्या भ्रूण हत्याएं नहीं हो रही है ? क्या इन्दिरा गाँधी व नीलम देव ही भारतीय महिलाओं की समूची स्थिति का चित्रण करती हैं – भारतीय महिलाएँ..... जिनकी गिनती दुनिया में लगभग आधी अरब के बराबर है.....। ◆

❑

■ **लघु कथा** – लता शर्मा

जात भाई

वो 'पार्टी' का काम करता है, लीडर है। लुगाई को सरकारी नौकरी में ''घुसेड़'' दिया है। जमीन घेर-घार कर पक्का मकान भी बनवा लिया है। बड़ा बेटा बुलेरो टैक्सी चलाता है, छोटा स्कॉर्पियो, तीसरा बी.पी.एल. की ठेकेदारी करता है और छोटा ''लीडरी'' में आ गया है।

अनेक राष्ट्रीय-अंत:राष्ट्रीय योजनाओं के बावजूद गाँव खाली हो रहे थे, शहर उफन रहे थे। गाँवों में अभाव ही अभाव था, सुविधाओं का, समानता का, सम्मान का, रोजगार का !

गाँव के दक्षिणी छोर पर बसे, गरीबी की रेखा से बहुत-बहुत नीचे रहने वाले असमंजस में थे। क्या करें ? अपने घर-गाँव छोड़, शहर जा बसें या यहीं, गाँव में पड़े रहे! वैसे ही ... जैसे उनके पुरखे रहते आए थे। सम्पन्न की गालियाँ – लात-जूते खाकर !

घसीटा और बर्दाश्त न कर सका। अपनी लुगाई और बच्चों को बटोर-शहर चला गया। पछीटा इतनी हिम्मत न कर सका और जैसे-तैसे गाँव में ही गुजर-बसर करता रहा।

पाँच साल बाद घसीटा लौटा, तो गाँव उसे देखता ही रह गया। चिकना बदन, छोटीस ीत ोंद!च मचमक रतेक पड़े-जूते। जेठ के महीने में भी फुल पैन्ट, पूरी बाँह की कमीज। लुगाई के हाथ-पाँव में चाँदी के जेवर।

घसीटा ने बताया शहर में सबको कोई नक ोईक ार्मि मलह ीज ाताहै ाब च्चोंक ो सरकारीस् कूलम ेंम ुफ्तप ढ़ाई ाख ानाअ ैर वजीफाऊ परस ो ाव हत ोअ पनेब च्चोंक ो अंगरेजीस् कूलम ेंप ढ़ार हाहै ाव ो' पार्टी' का काम करता है, लीडर है। लुगाई को सरकारी नौकरी में ''घुसेड़'' दिया है। जमीन घेर-घार कर पक्का मकान भी बनवा लिया है। बड़ा बेटा बुलेरो टैक्सी चलाता है, छोटा स्कॉर्पियो, तीसरा बी.पी.एल. की ठेकेदारी करता है और छोटा ''लीडरी'' में आ गया है।

घसीटे ने पछीटे ही खस्ता हाल झोंपड़ी देखी अधनंगे ठठरीनुमा बच्चे देखे। उसने अपने जात भाई को ढाढस बँधाया।

''कब तक इस गाँव में चिपका पड़ा रहेगा ? शहर आजा! कुछ न कुछ इंतज़ाम होह ीज ाएगा ात ूम ेराब चपनक ाय ारह ै, भूल मत। अपनी खुशहाली का जलवा दिखा घसीटा शहर लौट गया।''

घसीटे को पता न था कि भूखे पेट रहकर भी गरीब की बेटी वक्त से पहले जवान हो जाती है। गुड़ खुले में रखा हो तो चींटे आऐंगे ही !

घसीटे का जीना मुश्किल हो गया।

मालिकों ने साफ कह दिया। पछीटा बूढ़ा हो गया है।

दियासलाई जवान है, उसे ही काम पर भेजो। वरन ...

एक रात चुपचाप अपना सामान बटोरा पछीटा शहर आ गया।

घसीटे के पक्के घर के सामने खड़ा पछीटा परेशान था। जो पता बताया था, वहाँ घसीटे को कोई नहीं जानता! यह मकान तो जी.एल.सिंह तिलक का है उसी समय घसीटे की मोटर साईकिल आ पहुँची। तीन आदमी लदे थे। तिलक और

हिन्दी कहानी संसार में चर्चित हस्ताक्षर। बेबाक लेखन। गली रंगरेजान नवीनतम उपन्यास और जिन दिन देखे वे कुसुम कहानी संग्रह के चर्चित।

सम्पर्क :

Rudrapriyam
1-ga-9, Vigyan Nagar,
Kota-324005, India.

फूलमालाओं से सजे।

हाँ...हाँ... यही घर है उसका! तिलक ? वह कुछ नहीं ... यों ही ... अंगरेजी नाम है।

घसीटे ने अपना वायदा निभाया।

शहर के बाहर झुग्गी बस्ती में झोंपड़ा! कीमत पाँच हजार! अभी नहीं है तो कागज पर अंगूठा लगाओ। पाँच टका ब्याज!

अब ? अब काम करो। मेहनत मज़दूरी करो। वह न बन सकें तो 'पार्टी' में घुस'ज ाओउ नकाक ामक रो ार ैली, सभा वगैरा। पार्टी के लिए लड़ो, वो तुम्हारे लिए लड़ेगी! कर्जा लो, बुलेरो खरीदो टैक्सी चलाओ।

कर्जा चुकाऊँगा कैसे ?

कर्जा लेने को कह रहे हैं, चुकाने के लिए नहीं ! 'पार्टी' कर्जा माफ करवा देगी।

लड़की की समस्या का हल भी घसीटे के पास था।

''पन्द्रह अगस्त को एक सौ एक जोड़ों का सामूहिक विवाह करवा रहे हैं। उनका भी नाम लिख लेंगे। बस्स... दो हजार रूपया देना होगा ! नहीं है ? कोई बात नहीं। कागज लिख देना।''

''तुम्हारे बेटों का भी ब्याह हो रहा है ?''

''सामूहिक विवाह गरीब-गुरबों के लिए है। मेरे बेटों का ब्याह धूमधाम से करूँगा। पढ़ी लिखी सरकारी नौकरी वाली लड़की लाऊँगा। लड़कियाँ भी ऊँचे घर में दूँगा।''

''मेरी बिटिया का ब्याह किससे करोगे ।''

''वह अपना भी झींगुर ... कई साल से पीछे पड़ा है।''

''झींगुर ! वो तो पक्का स्मैकची है। चार बार जेल काटी है। दिन भर सोता है, रात भर तार-लोहा चुराता है।''

पछीटे ने घसीटे के पाँव पकड़ लिए।

''अपने ही घर में ले लो बिटिया को। बचपन के यार हो मेरे। अपने बेटे से भाँवरे फिरवा दो !''

बीड़ी फेंक पीढ़े को लात मार भन्ना के खड़ा हो गया घसीटा।

''तेरी ये मजाल ! मेरे घर में बेटी देने के मंसूबे बाँध रहा है ? तेरी औकात क्या है ? बता ! जरा उंगली क्या पकड़ाई, गले पड़ने लगा ! कान खोल के सुन!ब याहके ि लएअ पनीह ीत रहक ा, अपनी ही जात का घर-वर देखना चाहिए।अ पनेस ऊँ चेघ ारक ोत ाकात ो मुँह के बल गिरेगा।''

घुर्ररर... मोटर साईकिल पर बैठ, उड़ गया जी.एम. सिंह तिलक! ◆

पुनर्जन्म

हलवाई की नाक के नीचे से लड्डू खींच ले जाते हैं। उनका बिल क्या है, अन्न का भण्डार है। मेवे-मिठाइयाँ, अन्न-वस्त्र! क्या नहीं है वहाँ ? बिल भी तो अमीरों की बस्ती में, पक्के कंक्रीट के मकान में बनाया है!

देश के इस भाग में, इन लोगों के लिए हमेशा ही अकाल रहता है। भूख से बिलबिलाते लोग घास के बीज और चूहे खाकर 'भूख से मौत' जैसी अखबारी सुर्खियों को टाल रहे थे।

कड़ी धूप में बच्चे घास-फूस सुलगा कर चूहों के बिल में ठूँस रहे थे। बिल में धुँआ भर जाने से अधमरे चूहे आसानी से हाथ लग जाते हैं।

धुआँ...धुआँ...धुआँ! चारों तरफ धुआँ ! चूहा बेहद घबरा गया। क्या करे, कहाँ जाए ? बिल के दूसरे छोर पर बच्चे पत्थर लिए तैयार खड़े थे। ... एक रास्ता और है। रेत के ढूह में इसीलिए बिल बनाया था उसने। एक नहीं, अनेक रास्ते थे वहाँ ! बची-खुची ताकत समेट कर भागा। भागते-भागते, आधे रास्ते से लौटते-लौटते, आखिर ऐसा छोर मिल ही गया जहाँ से दिन का उजाला चौंध मार रहाथ ा।ब तेहाशाभ ागाच ूहा।. ..न सीब देखो। चटख धूप और गर्मी से ढूह ढह गया था और लुढ़कता-पुढ़कता चूहा सीधा नाले में जा गिरा । नाला, जो कभी नदी था।

डूबता-उतराता किसी तरह दूसरे किनारे पर पहुँचा। छि:! यह भी कोई जिन्दगी है ? ... नहीं जी। जिन्दगी तो ठीक है। उसे ही जीने का सलीका नहीं आता। उसके ही साथी हैं! मोटे-ताजे, बिल्ली के आकार के चूहे! हलवाई की नाक के नीचे से लड्डू खींच ले जाते हैं। उनका बिल क्या है, अन्न का भण्डार है। मेवे-मिठाइयाँ, अन्न-वस्त्र! क्या नहीं है वहाँ ? बिल भी तो अमीरों की बस्ती में, पक्के कंक्रीट के मकान में बनाया है! अमीरों को क्या जरूरत मुट्ठी भर अन्न के लिए चूहे के बिल में धुआँ करने की!

एक वह है ! रेत के ढूह में बिल, घासके ब ीजअ ैरज ड़प रग ुजारा! वो

कच्चा बिल भी ये बच्चे तोड़ देते हैं। उसका ज़रा-सा सहारा छीन ले जाते हैं।

अब? अ बक याक रें,क हाँज ाए? इधर-उधरद ेखा!स ामनेग णेशज ी,क ा मंदिर था। मूर्ति के चरणों में बैठा, स्वस्थ प्रसन्न चूहा लड्डू कुतर रहा था।

''एक यह है और एक मैं हूँ।'' भूख और दुख से व्यथित चूहे ने सोचा। ... सोचाअ ैरस ोच-समझक रग णेशजीके चरणों में आत्म समर्पण कर दिया।

''प्रभु ... मुझ पर कृपा करो ! भूख-प्यास से निरन्तर भाग-दौड़ से मैं तंग आ गया हूँ और इस जीवन से छुटकारा चाहता हूँ। मुझे भी कहीं अच्छी तरह ''फिट'' करो ! ... दया करो प्रभु।''

कुछ काम करो तो रास्ते की बाधाएँ गणेश जी हटा देते हैं। बिना कुछ करे-धरे वरदान देने की कुटैव उनमें नहीं! हाँ !. ..उ नकेच रणोंम ेंल ड्डूक् तरतेच ूहे ने व्यंग्य से मुस्करा कर कहा।

''तथास्तु ! जो चाहोगे, मिलेगा। नो मोर भाग-दौड़, नो भूख प्यास।''

बड़ी मुश्किल से रात काटी चूहे ने ! सुबह की पहली किरण के साथ उसका पुनर्जन्म हो जाएगा। सुबह हुई ! सारी दुनिया नए दिन, नई रोशनी और नए अवसरों से भर उठी !

कमरे का दरवाजा खुला। दिन होते हुए भी बिजली के बटन दबाए गए। कम्प्यूटर जाग उठे।

''माउस कहाँ है ?''

सशक्त हाथ ने चूहे को जकड़ लिया!

क्लिक .... क्लिक .... क्लिक .... डबल क्लिक .... राइट क्लिक ◆

■ **लघु कथा** – राजवंत राज

देवकन्या

औरत भागती हुई हमारी रेलगाड़ी की तरफ भागी और मदद की गुहार करने लगी, ''कौनों इमा डाकटर होवै त हमिरे लरिका का बचाय लेव। ओका सांप डस लिहिस है अेरे कौनो मदद करौ।''

हिन्दी साहित्य के पठन-पाठन में रूचि। कहानियाँ और कविताएं लिखती हैं।

सम्पर्क :

C - 35, J park 2
Vigyanpuri, Mahanagar,
Lucknow-226006

लखनऊ आते समय सिग्नल न मिलने की वजह से ट्रेन खड़ी हो गई थी। शाम धुंधला रही थी। रेल की पटरियों के किनारे छोटे छोटे गड्डों में पानी जमा था। दाहिनी तरफ एक तालाब-सा था जिसमें कमल के कुछ सुन्दर फूल अलसाये से खड़े थे। उस तालाब के पानी में भी शाम गहरा गई थी। खेतों में दिन भर की मेहनत के बाद गिरे पसीनेह ैस ोनाउ गाक रक् छ ि कसानह ल बैल के साथ वापसी कर रहे थे तभी उसके झुंड में से चीखने चिल्लाने की आवाज आने लगी। क्या हुआ कुछ समझ में नहीं आ रहा था। उनमें से कोई औरत भागती हुई हमारी रेलगाड़ी की तरफ भागी और मदद की गुहार करने लगी, ''कौनौं इमा डाकटर होवै त हमिरे लरिका का बचाय लेव। ओका सांप डस लिहिस है अेरे कौनो मदद करौ।''

सिग्नल न मिलने की वजह से खड़ी गाड़ी से कोई डाक्टर होता भी तो भला वो उतरने से रहा। वो औरत छाती पीट-पीट कर दहाड़े मारने लगी ''अरे बचाय लेव, बचायल ेवह मरेल रिकाक ा।ह ेभ गवान! कौनोंम ददक रौ।''य ात्रीउ सेउ ल्टेड ँटने लगे, ''जल्दी उसे अस्पताल ले जाओ यहाँ रोने चिल्लाने से कुछ नहीं होगा यहाँ कौन डाक्टर मिलेगा।''

तभी मैने देखा कि एक तीस पैंतीस साल की युवती बिना कुछ बोले अपना सूटकेस लेकर उतरी। उसने औरत को ढांढ़स बंधाया और खेत की तरफ तेज कदमों से बढ़ गई। एक माँ की आवाज भगवान तक पहुँच गई थी। रेलगाड़ी को सिग्नल मिला। वो भी गोमती पर बने पुल को रेंगते हुए पार करने लगी।

जाने क्यों मुझे ऐसा लगा कि एक पुल उस माँ और भगवान के बीच भी बन गया था जिस पर चलकर वह युवती अपना धर्म निभाने को तत्पर हो उठी थी। साक्षात देवकन्या सी! ◆

▪ **कविता** - अंजना संधीर

संक्षिप्त परिचय : हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी और उर्दू में लेखन।
सम्पर्क :
L-104 Shilalekh Society Ahamadabad,
Gujarat, India.

स्वाभिमानिनी

उसने कहा
द्रौपदी शरीर से स्त्री
लेकिन मन से पुरूष है
इसीलिए पाँच-पाँच पुरूषों के साथ
निष्ठापूर्ण निर्वाह किया।
नरसंहार में भी विचलित नहीं हुई
खून से सींचकर अपने बाल
तृप्ति पाई
फिर भूल गई इस राक्षसी अत्याचार को भी
क्या सचमुच ?

मन से पुरुष स्त्रियों का यही हाल होता है
हर जगह अपमानित होना होता है
हमेशा निशाना बनना होता है।
मन से स्त्री बने पुरुष को भी
क्यों नहीं स्वीकारते सब ?

सत्य ये है कि पुरुष और प्रकृति का भेद स्वीकार्य है
पुरुष समान स्त्री आकर्षित करती है
अच्छी लगती है लेकिन स्वीकार्य नहीं
क्योंकि आदमी का बौनापन जाहिर हो जाता है
मजबूत स्वाभिमानिनी स्त्री के सामने।
इसीलिए.....
पहले उसका स्वाभिमान तोड़ा जाता है
फिर स्त्रीत्व..... फिर कुछ और.....

❑

संवाद चलना चाहिए

''तुम एक ग्लोबल पर्सन हो
वापस जा कर बस गई हो
पूर्वी देश भारत में फिर से
लेकिन तुम्हारी विचारधारा
अब भी यहाँ बसी है, ऐसे नहीं छोड़ सकतीं तुम हमें.....
बहुत याद आती है तुम्हारी.....''
ढलती हुई शाम के देश से
उगते हुए सूरज के देश में, सुबह-सवेरे
सात समुन्दरों को पार करती
आवाज ने अपनेपन में लपेट लिया।
अमरीका और भारत में दूरी
कहाँ है!
ईश्वर कहाँ है, उसके विचार ही चलते हैं सर्वत्र
आदमी को आदमी की तलाश होनी चाहिए
ईश्वर तो मिल ही जायेंगे
ग्लोबल पर्सन में बदल गई
ग्लोबल वूमेन।
झूल गई झूले में स्मृतियाँ
मिठास बातों की, जज्बातों की
घोल गई मिश्री
मैं यहाँ रहूँ, वहाँ रहूँ, क्या फ़र्क पड़ता है ?
फ़र्क पड़ता है कर्म का
स्वभाव का, मेलमिलाप का, अपेक्षा का
रिश्तों का, संवाद का
संवाद चलना ही जीवन है
यहाँ रहो या वहाँ
संवाद चलना चाहिए।

❑

■ **कविता** – रचना श्रीवास्तव

संक्षिप्त परिचयः प्रवासी रचनाकारों में उभरती कवयित्री। महत्वपूर्ण पत्रिकाओं में निरन्तर प्रकाशित। इण्टरनेट पर अनेक पत्रिकाओं में कविताएं छपती रहती हैं। रेडियो फन एशिया, रेडियो सलाम नमस्ते और रेडियो संगीत में नियमित कविता पाठ।

सम्पर्क :

rach_anvi@yahoo.com

थका मन और आधी रात

दिन भर का थका मन
जाग उठता है
आधी रात को
    आवारा-सी हवा
    गर्द में भटकने के बाद
    खटखटाती है दर मेरा
    मांगती है सूरज
    आधी रात को
कुछ बौराई उमंगें
जो उजालों में घुटती रहीं
अंगडाई लेती है
ताखे पर कहीं
आधी रात तो
हंसी तार तार होके
गम की चादर सीती है
पैबन्द उधड मुँह चिढ़ाता है
पीड़ा जीन का जश्न मनाती है
आधी रात को
    दर्द पीढ़े पर बैठ
    जीवन की खुराक मांगता है।
    कुछ बची सांसें परोसती हूँ
    पर भूख बढ़ी जाती है उसकी
    आधी रात को
बोझ बनते हैं आँसू
तो सिरहाना भीगता है
नम सुलगता है मेज़ पर कहीं
मैं ख़ुद से जन्म लेती हूँ
आधी रात को
    पंखे पर लटकते तुम्हारे शब्द
    मेरी सोचों पर रेंगते हैं
    विचार बदल देते हैं दिशा
    सहम के दुबक जाते है कोने में
    आधी रात को
    खूंटी पर टंगा जिस्म
    रूह पहन मुझसे पूछ़ता है
    कैसे सोती हो
    टूटे सपनों की किरचों पर
    आधी रात को
दिन भर का थका मन
जाग उठता है
आधी रात को

❑

मोह

आतंक के तांडव में
इंसानियत को
पर्त दर पर्त छिलता हुआ
एक दुबली काया पर
वो अपना शिकंजा कसने को था
कि उन आँखों का सूरज देख
पूछ बैठा –
बता तेरी अंतिम इच्छा क्या है?
आखेट पर थी हिरनी
फिर भी बोली
छीनते हाथ देंगे क्या?
पर दे सको तो
मेरे टूटे छप्पर पर
एक बरसाती बिछा देना
बहुत टपकता है बरसात में

मेरे भूखे बच्चों को
भोजन का भरम दे देना
मै कई दिनों से
उनके लिए भूख पका रही थी
हो सके तो उनकी
खाना मिलने की उम्मीद बचा लेना
मेरी बेटी 28वें बसंत में है
गरीबी में जवानी
वो कमल है
जिसे हर कोई
अपनी जागीर समझ
तापने की चाह रखता है
निचोड़ रंग उसके
पल अपने रंगीन कर
कैनवास भरना चाहता है
उन की गिद्धी निगाहों से
मैंने छुपा रखा था उसे
उसकी खुशबू बिखरने से बचा लेना
मेरा छोटा
धनक के रंगों पर चढ़
तारों की नोक छूना चाहता है
मन की उड़न से
जीवन के हर पहलू को जीना चाहता है
पर नहीं
उस के सुंदर नैनों में
ज्योति पुंज का वास नहीं
माँ कह के बढ़ाए जो हाथ
तो थाम लेना
स्वयं बिखर
मैने इन्हें समेटा है
इनके लिए उम्मीद लेने निकली थी
कुछ सिक्के चमके हाथों में
पर रूह का तिनका तिनका बिखर गया
ये फड़ फडाती उम्मीद
उन तक पंहुचा सको तो
मैं माँ हूँ
मुझसे लिपटी हैं बहुत सी जिम्मेदारियाँ
मैं कटी तो वो भी मुरझा जायेंगी
बचा सको तो उन्हें
झड़ने से बचालो
या ममता का बोझ उठा लो
मेरी इच्छाओं की गिरह बांध लो
इस रक्तपात में
शब्द जो बिखर गए
अभिलाषा खंड-खंड हो
तुम्हारी सोच में चुभेगी
आतंकवादी हो
करोगे हत्याएं
फैलाओगे आतंक
पर दोष तुम्हारा नहीं
क्या कर रहे हो
खुद जानते नहीं
तुम्हारी सोचें गुलाम हैं
तंत्रिकाओं पर किसी और का पहरा है
उसी के निर्देश पर
बह रहे रो
इस बहाव में कुछ रोड अटका के
किनारे लग सको तो लग जाओ
शब्दों को चबाता हुआ
कुछ सोचता रहा
इस ज़िम्मेदारी के बोझ को छोड़
धक्का दे
अपनी नफरत का लावा
औरों में उडेलता हुआ
वो आगे बढ़ गया।

❑

▪ निशी जनजाति में प्रचलित लोक कथा और गीत – डॉ० जोराम आनिया ताना

1976, 1 जनवरी जोराम गाँव, लोअर सुबानसिरी अरूणाचल प्रदेश में जन्म
प्रारंभिक शिक्षा-वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान उच्चशिक्षा-मिरांडा हाऊस, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली पी.एच.डी – अरूणाचल विश्वविद्यालय (वर्तमान राजीव गाँधी विश्वविद्यालय) अरूणाचल प्रदेश। बचपन से ही लोक गीतों व कथाओं में दिलचस्पी।
ईटानगर में अध्यापन।
निशी जनजाति में पहली महिला पी.एच.डी.। हिन्दी में पी.एच. डी करने वाली पहली अरूणाचली महिला। कुछ आलेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपे। संगोष्ठियों में सक्रिय भागीदारी।
इस समय निशी लोकगीतों के विस्तृत संग्रह में संलग्न।
सम्पर्क :
Qtr. No 295 (B) 'E' Sector, Naharlagun papumpare Dist. Arunachal Pradesh -791110.
Mobile No- 9436896555, E - mail : yania tana@yahoo.com

कथा इस प्रकार है कि एक नवयुवक जिसके घर में एक बहन को छोड़कर कोई नहीं है वह घर से दूर खेत में मचान बनाकर खेती करने के लिए रहता है। एक दिन खेत में काम करने के बाद जब मचान पर पहुँचा तो उसने देखा कि भात बनाने के पात्र में चावल पड़ा हुआ है। उसको बहुत आश्चर्य होता है। उसकी जिज्ञासा बढ़ जाती है और वह भोजन बनाने वाले का पता लगाने के लिए झाड़ियों में छिपकर बैठ जाता है। उसने देखा कि एक बहुत सुन्दर लड़की पेड़ पर लटकती हुई शाखाओं और लताओं पर झूलती हुई मचान के नीचे आकर उतरती है। जल्दी-जल्दी मचान पर रखे हुए चावल में से वह एक दाना लेकर पकाती है, जिससे वह पात्र पूरा भात से भर जाता है। वह झाड़ी से निकलकर लड़की को पकड़ लेता है। उस लड़की के सौन्दर्य और एक दाने से भात बनाने का चमत्कार देखकर उससे विवाह का प्रस्ताव रखता है। लड़की विवाह-प्रस्ताव को तुरन्त स्वीकार कर लेती है किन्तु वह कहती है ''यदि तुम मुझसे विवाह करना चाहते हो तो तुम्हें अपनी बहन की हत्या करनी पड़ेगी।'' युवक ने बिना सोचे-समझे लड़की के सौन्दर्य पर मोहित होकर उसकी शर्त मंजूर कर ली। इसके बाद वह लड़की को पत्नी बनाकर अपने घर लाता है। घर आकर पत्नी बहन की हत्या के लिए बार-बार कहती है। लेकिन युवक बहन की हत्या करने के विचार से काँप जाता है और हर समय रोता रहता है। बहन भाई को रोते हुए देखकर बार-बार पूछती है कि वह क्यों रोता है परन्तु भाई इसका कोई उत्तर नहीं देता है।

पत्नी के बार-बार कहने से वह विवश होकर एक दिन बहन को कहता है कि देखो नीचे माँ की माला पड़ी हुई है। जिस समय बहन माला को झुककर देखती है वह अपनी तेजधार तलवार (दाओ)से उस की गर्दन काट देता है। इसके बाद परम्परानुसार घर के पास दफ़ना देता है।

दूसरे दिन कब्र से बहन का शव गायब पाकर उसने इधर-उधर देखा तो पाया कि उसकी पत्नी पेड़ पर बैठकर उसकी बहन का माँस खा रही है और उसका मुख और हाथ खून से लथ-पथ है। यह देखकर वह समझ जाता है कि यह एक औरत नहीं बल्कि नरमाँस भक्षी राक्षसनी है। माँस खाने के बाद वह राक्षसनी जंगल में विलीन हो जाती है। युवक खेती के लिए फिर सुदूर खेत में मचान बनाकर सोता है। बहन की आत्मा छोटी चिड़िया के

रूप में उसको पुकारती है और भाई का हृदय असह्य वेदना से भर जाता है। बहन पुकारती हुई गाती है–

1. आच–आचा पिओ – पिओ
डाक आन गह पिओ– पिओ
दिस हुचाम पिओ – पिओ
जिला कुवका पिओ– पिओ
आच – आचा पिओ– पिओ
नावको नाम दे पिओ– पिओ
एमबिन तरतू डाम पिओ– पिओ
एचिन पची व पिओ– पिओ
मजिका दुकले पिओ– पिओ

2. आच –आचा पिओ– पिओ
डाक वो आनगह पिओ– पिओ
दुलुप दूतुप पाम पिओ– पिओ
जिला कूवका पिओ– पिओ
आच–आचा पिओ– पिओ
नाकदो नाम दे पिओ– पिओ
एमबिन चिरकिन नाम पिओ– पिओ
एचिन चिरो वह पिओ– पिओ
मजिका युकूले पिओ– पिओ

3. आच – आचा पिओ– पिओ
नाकवो न्यम दे पिओ– पिओ
दोव यो डाम पिओ– पिओ
निन निदले पिओ– पिओ
न्याब नयादल पिओ– पिओ

4. आच–आचा पिओ– पिओ
ङाक वा आनगह पिओ– पिओ
येर वा गिनचाम पिओ– पिओ
जिला वा कूवका पिओ– पिओ

5. आच–आचा पिओ– पिओ
नाकवो न्यम दे पिओ– पिओ
नागह ने ही ङाम पिओ– पिओ
नागह नियत्ताम पिओ– पिओ
निन नित ले पिओ– पिओ
न्याब न्याद ले पिओ– पिओ

6. आच–आचा पिओ– पिओ
ङाक वो आन गह पिओ– पिओ
लूँग पे वो ङाम ना पिओ– पिओ
जिला वो कुवका पिओ– पिओ

7. आच–आचा पिओ– पिओ
नाकवो न्यम दे पिओ– पिओ
नाकवो निम नाम पिओ– पिओ
नाकवो नाहे नाम पिओ– पिओ
निनवो नितले पिओ– पिओ
न्याव वो न्यादले पिओ– पिओ
आच–आचा पिओ– पिओ

8. नाकवो न्यम दे पिओ– पिओ
नाम ओमुम दुकूले पिओ– पिओ
युवगह दुकूले पिओ– पिओ
अरवो दुकूले पिओ– पिओ
यूवगह दुकूले पिओ– पिओ

भावार्थ

1. हे,म`रेब ड़ेभ इया!म`रीम ाँक ाध ान मापने का पात्र मुझे दे दीजिए। आपकी पत्नी तो आपको एक दाने चावल से ढेर सारा भात तैयार कर देती होगी। इसलिए उनको चावल मापने के पात्र की आवश्यकता नहीं होगी।

2. हे, मेरे बड़े भइया! मेरी माँ की उन चीजों को दे दीजिए, जिससे माँ चावल नाप कर, भात बनाकर खिलाया करती थी। आपकी पत्नी को उसकी आवश्यकता नहीं होती। क्योंकि आपकी पत्नी तो आपको एक दाने चावल से भात तैयार कर देती होगी।

3. हे, मेरे बड़े भइया! आप की पत्नी तो सभी रिश्तेदारों को प्रेमपूर्वक खिला पिलाकर सबका स्वागत करती होगी। सबका उदार मन से आतिथ्य करती होगी।

4. हे, मेरे बड़े भइया! आपकी चमत्कारी पत्नी को शायद मेरी माँ की इन चीजों की आवश्यकता नहीं होगी। इसलिए मेरी माँ की टोकरी भी मुझे दे दीजिए जिसमें धान भर कर खेत से घर लाया करती थी।

5. हे, मेरे बड़े भइया! आपकी पत्नी तो सभी जेठ–जेठानी, देवर–देवरानी से प्रेमपूर्वक व्यवहार करती होगी। आप उन सभी के साथ प्रेमपूर्वक आनंदमय जीवन जी रहे होगें।

6. हे, मेरे बड़े भइया! आपकी चमत्कारी पत्नी को मेरी माँ की 'झूम' काटने वाले चाकू की आवश्यकता नहीं होगी। इसलिए वह चाकू भी मुझे दे दीजिए।

7. हे मेरे बड़े भइया! आपकी चमत्कारी पत्नी भी सुशील आचरण से आस–पड़ोस के लोग, अतिथि–जन अति प्रसन्न होते होंगे। उन सब से आप मिलजुलकर रहते होगें।

8. हे मेरे बड़े भइया! आपकी चमत्कारी प्रिय पत्नी धर्म निभाती हुई, आपकी दिन–रात सेवा करती होगी, सुबह–शाम आपकी सेवा में संलग्न रहती होगी। अब तो आप स्वर्गीय सुख इसी धरती पर उठा रहे होंगे। ◆

❑

▪ कविता - सुशीला पुरी

संक्षिप्त परिचय : सामयिक साहित्य से परिचित। समीक्षा और कविता लेखन में रूचि। इण्टरनेट पर ब्लॉग की दुनिया से सम्बद्ध। पत्रिकाओं में रचनाओं पर ज्वलंत प्रतिक्रियाएं।

सम्पर्क :
C- 479/C, Indira Nagar, Lucknow, U.P.
Mobile-09451174520

खोज

वह खोजती है
उन शब्दों का साहचर्य
जहाँ आत्मा के पार का संसार
जीवित होता है
और बाँधता है पूरा आकाश।
वह खोजती है
उन क्षणों का सौन्दर्य
जहाँ शब्दों के बीच का मौन
महाकाव्य रचता है
सरल संस्तुतियों के साथ।
वह खोजती है
उन आत्मीय सम्बन्धों के स्वर
जहाँ पीड़ा भी संवरती है
निर्वसन-निराकार।
वह खोजती है
उस तोष के कुछ सूत्र
जहाँ अथाह एकान्त में
किया था उसने
मोक्ष से सहवास।

❑

असहाय स्थिति

रंगो से पहचानना छोड़कर
तुल जाती हूँ कभी-कभी
तुम्हें गन्ध से पहचानने पर
चिपक जाती है संवेदना निस्पंद
सीमाओं के सीकचों में
घिसटता है समय निर्लिप्त
जुड़ाव की बुलंदियों में भी
खुरदुरी हकीकतें
सहला नहीं पाती हैं
सघन बेबाकपन
और दर्ज़ हो जाते हैं
तमाम बेबस संगीत-सन्नाटे
ठूंठ की मानिंद
शिथिल सूखा हुलास
पसर जाता है
फिर से थके हुए दिन पर ।

❑

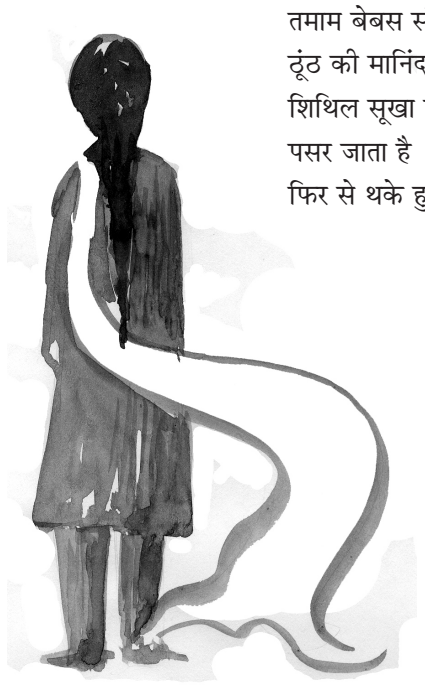

▪ कविता - रेखा मैत्रा

संक्षिप्त परिचय : बनारस में जन्मी रेखा मैत्र ने एम ए (हिन्दी) तक की शिक्षा सागर विश्वविद्यायल, मध्यप्रदेश से ग्रहण की। विवाह के बाद सन 1978 में यू एस ए प्रस्थान। रेखा जी शिकागो में रहते हुए वहाँ की जानी-मानी साहित्यिक संस्था ''उन्मेष'' की सदस्य रही हैं। वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से इनके अब तक आठ कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें हाल में वर्ष 2008में ''ढाई आख़र'' और ''मुहब्बत के सिक्के'' कविता संग्रह भी शामिल हैं। इनकी अपनी एक वेब साइट है - WWW, rekhamaitra.com

संमर्क :
12920, Summit Ridge Terrace, Germantown, MD 20874
फोन : 301 - 916-8825
ई-मेल : rekha.maitra@gmail.com

नशा

रोज़ सुबह, ख़ुद को
सूरज से मुकाबला करने को
तैयार करना होता है।

हर रात, मुझे
लहूलुहान करके
छोड़ जाती है।

जैसे कहती हो
कि देखूँ अब
तुम कैसे उठती हो ?

फिर भोर उगती है,
पंछी जागते हैं,
शोर मचाते है,
मुझे बुला ले जाते हैं,
वो अपनी भाषा में मुझे
जीने के गीत सुनाते हैं।

वो ही गीत, संगीत बन
मुझमें फिर जीने का
नशा पैदा कर जाते हैं!

❑

कड़वे सपने

मीठे सपनों की पोटली का
तकिया लगा कर वो सोती थी
पर, नींद थी कि आती ही नहीं थी
और जब नींद नहीं तो ख़्वाब भी नहीं!

कैसा रहे जो पोटली को खोल
उसमें नीम के पत्ते रख
फिर से बाँध दिया जाये
जैसे माँ, बासी गंध
दूर करने के लिये
सर्दी के कपड़ों में
नीम के पत्ते रख देती थी!

सपने की ताज़गी
तो पसन्द आई
पर डर लगा
कि सपने कड़वे न हो जायें!

❑

रंगोली

कविता की एक पंक्ति
हवा में फड़फड़ाती रही
पकड़ने की लाख कोशिश की
पर मायूसी ही हाथ लगी
तितली सी उड़ गयी
हवा में दूर कहीं
पर उसके रंग
सजाते रहे
मन को देर तक
भीतरी ज़मीन पर
रंगोली बनाते रहे!!

❑

▪ कविता - प्रज्ञा पाण्डेय

संक्षिप्त परिचय : हिन्दी साहित्य की दुनिया में नया नाम। लघु कथाएं और कविताएं लिखती हैं। निकट के माध्यम से पहली बार साहित्यिक दुनिया के सामने।

सम्पर्क:
C- 89 Lekhraj Nageena, Third floor,
Church Road, Indira Nagar, Lucknow,
Uttar Pradesh.

खजाना

यह सिन्दौरा मेरा है
इसी के साथ यहाँ आई भी मैं
कहा गया था कि
बहुत संभालना है इसे
सिर से लगाकर ही पीना है पानी और
फिर छूने है चरण सबके।
यह भी कहा गया था कि
दीवारों के भीतर तक है मेरा घर
और बताया कि अब मैं बड़ी और
जिम्मेदार हूँ।
मैं भी रखती थी सिन्दौरा बक्से में
लगाती थी एक ताला ऊपर से
लेकिन अचानक कल कुछ हुआ
एक गौरैया आंगन में आई,
औरम ेरीप लकोंस ेभ ागी,उ नप रस ोए गीत
मैं भागी उसके पीछे
भूल आई ताला वही पर।
अब बक्सा खुला है
कोई क्या चुराएगा ? मेरा सिन्दौरा ?
अगर चुरा भी ले गया
तो क्या ले जाएगा
मैं, मांग लाई हूँ अपने गीत
उस गौरैया से।

❑

औरतें

औरतें तलाशती हैं
छत, आँगन
आंचल गीत,
खोजती है आकाश,
थोड़ी धूप
हक बकाई औरतें
ढूंढ रही हैं
दौरी, सूप
वे खोजती है आग
उन्हें पकानी भी है रसोई
पतझड़ होगी औरतें
स्तनों के बीच
खोजती हैं बच्चे
और पूछती है आतंकियों से
कहाँ मिलेंगे कोने ?
जिनमें छिपती थीं वे
मार खाकर।

❑

तब और अब

याद आती है बचपन में देखी बारिश
लरज उठती की बंसवारी
सागौन के पत्तों से फिसलता पानी
बेसब्र होकर चूमता था ज़मीन
मैं काम के बहाने पार करती भी आंगन
बिना बताए किसी को
भीगती थी छत पर
रात के घटाटोप अंधेरे में भी
बिजली की कौंध पर साध लेती भी दम
और खोजती थी वही उसकी कौंध में
आज वही बारिश है, बंसवारी है, सागौन
के पत्रों से फिसलता पानी है
मगर मैं पार नहीं करती आंगन भीगने के
डर से
भूल गई हूँ छत
नहीं खोज पाती थोड़ा सा आसमान अपने
लिए।

❑

▪ गीत – निर्मला जोशी

संक्षिप्त परिचय : प्रख्यात कवयित्री। गीत की दुनिया में समर्थ हस्ताक्षर। पांच दशकों से भी अधिक समय से लेखन। अपने समय के प्राय: सभी चर्चित कवि समाज के साथ कविता पाठ का सौभाग्य प्राप्त। निर्मला जी ने निकट के लिए अपने बिल्कुल नए गीत दिए। पत्र पत्रिकाओं में सैंकड़ों गीतों का प्रकाशन। कई साहित्यिक पत्रिकाओं का सम्पादन।

सम्पर्क :
L.A. 318, E 7, Arera Colony, Bhopal-462016, Phone-+07552465509

चेतना के गीत गाना चाहती हूं......

भूल कर भी,
मन कभी,
उस द्वार से
अनुनय न करना
क्योंकि
मैं तुझको,
निरादर से
बचाना चाहती हूँ।
हां जहां सागर हिलोरें
ले रहा जिनके हृदय में।
और जिनकी कामना
केवल भटकती हो मलय में।
जो न समझा
हो, व्यथा
कैसी हुआ करती
मनुज की,
मैं तुझे ऐसा
कथानक, फिर
सुनाना
चाहती हूं।
एक क्या, सौ बार मुझको
भूल का अनुभव हुआ है।
तब कहीं यह जिन्दगी
पहचानना संभव हुआ है।
मैं न चाहूंगी
कि तुम,
जड़वत् रहो
या टूट जाओ।
इसलिये मैं
चेतना के,
गीत गाना
चाहती हूँ।

❑

धार के विपरीत..........

मीत मेरे
धार के विपरीत चल।
यह अंधेरा
दीप जुगनू
चांद-तारे पी रहा।
फूटता जो
ज्योति अंकुर
एक पल ना जी रहा।
है तुझे जलना मगर एक सूरज बनके जल।
इस बिछलती
राह पर
क्या किसी का है पता।
आदमी की
पूछ मत
हैं फिसलते देवता।
सभ्यता के नाम पर है मिला एक जंगल।
इस हवा को
छेड़ तू
इस लहर को चीर दे।
अब धरा की
पीर को
तू नयन का नीर दे।
रात यह गहरा गई रंग इसका तू बदल।

■ **गीत** – पूर्णिमा वर्मन

संक्षिप्त परिचय : अन्तर्जाल पर पिछले एक दशक से हर सप्ताह प्रकाशित होने वाली बहुचर्चित पत्रिकाएं अभिव्यक्ति और अनुभूति की सम्पादिका। कहानी कविता गीत समीक्षा और लेख के माध्यम से निरन्तर लेखन। कई नाटकों का निर्देशन। साहित्यिक गतिविधियों में सक्रिय।

सम्पर्क :

Phone-+97165669012

धूप के दिन आए

मौसम बीते,
गए सुभीते
धूप धूप के दिन आए

दरवाजे पर देती पहरे
कड़ी दुपहरी आँगन घेरे
दीवारों पर उड़ती आग
चुप सहता सन्नाटा ताख
झरते पीले पात
हाय धरती कुम्हलाए
छाया सीते,
गए सुभीते
धूप धूप के दिन आए

हाँफे दूब पेड़ छितराए
जेठ महीना सहा न जाए
जलती पड़ी कटीली बाड़
कड़क रौशनी बंद किवाड़
बगिया जोहे बाट
कौन साँकल खटकाए
थाले रीते
गए सुभीते
धूप धूप के दिन आए

❑

रखे वैशाख ने पैर

रखे वैशाख ने पैर
बिगुल बजाती,
लगी दौड़ने
तेज़-तेज़
फगुनाहट

खिले गुलमुहर दमक उठी फिर
हरी चुनर कर छींट सिंदूरी।
सिहर उठी फिर छाँह
टपकती पकी निबौरी
झरती मद्धम-मद्धम
जैसे
पंखुरी स्वागत

साथ हवा के लगे डोलने
अमलतास के सोन हिंडोले।
धूप ओढ़नी चटक
दुपहरी कैसे ओढ़े
धूल उड़ाती गली
गली
मौसम की आहट।

❑

■ **समीक्षा :** डॉ० दया दीक्षित

संक्षिप्तप रिचयः डॉ० दया दीक्षित। कहानीकार एवं समीक्षक। डी०ए०वी डिग्री कॉलेज कानपुर में हिन्दी-विभाग में रीडर।
सम्पर्क :
१२८/३८७ वाई ब्लॉक
किदवई नगर कानपुर, उ.प्र.
मोबाइल - +९४१५५३७६४४

आइने में अक्स

गीताश्री द्वारा संपादित एक नई किताब आई है-तेइस लेखिकाएँ और राजेन्द्र यादव। इस किताब में नई कहानी आंदोलन के प्रमुख प्रवर्तक और कथा समीक्षा के विलक्षण व्याख्याकार श्री राजेन्द्र यादव के जीवन के अंतरंग पहलुओं पर राजी और नाराजी भरे विवरण और विश्लेषण हैं। उनके व्यक्तित्व के अंतस् और बाह्य के सरलतम और उलझे हुए तंतुओं को सहेजते हुए उनके जीवन की निर्मम पड़ताल की गई है इसमें। ठीक उसी तरह जैसे लोग करते हैं प्रेमचंद या शरतचंद या टॉल्स्टाय के जीवनगत अंतर्विरोधों की। यह किताब एक तरफ जहाँ यह बतलाती है कि क्यों राजेन्द्र यादव को सदी का खलनायकक हाग याह ै,क योंउ न्हेंद ूसरे दूसरेए ेसेह ीि वशेषणि दयेग एह ैं।व हीं दूसरी तरफ यह किताब राजेन्द्र यादव की उस दिनचर्या की भी विवरणिका है, जो बेहद अनुशासित और पढ़ने लिखने को समर्पित है। एक तरफ निर्मला जैन के आक्षेप हैं, तो दूसरी तरफ बकौला मन्नू जी, किसी से भी कटुवचन न बोलने वाला राजेन्द्र जी का करुणा विगलित स्वभाव भी है। राजेन्द्र यादव के दोस्तों दुश्मनों और सहयोगियों समर्थकों ने पूरे दिल से उनकी खामियों और खूबियों की चर्चा की है। यही वजह है कि यह एक जरूरी किताब है उनके लिये जो लोग राजेन्द्र जी को जानना चाहते हैं। जितनी जरूरी किताब है यह राजेन्द्र जी के दोस्तों, शुभेच्छुओं के लिये, उतनी ही जरूरी बन गई है उनके दुश्मनों और कटु आलोचकों के लिये। यह एक महत्त्व की किताब हो सकती है साहित्य के उन पाठकों और शोधार्थियों के लिये जो राजेन्द्र यादव के रचनाकार की तह में जाकरउ नकीर चनाप क्रियास ेम ुखातिब होना चाहते हैं।

लेखन के अपने-अपने तौर तरीकों के फ़न में माहिर तेइस लेखिकाओं में किसी ने उन्हें यानि यादव जी को 'गुफ़्तगू के लतीफ़ फनकार' माना है, किसी ने 'रचनाअ रचना'स ेअ पनीब ातश ुरूक ी है। तो किसी ने उन्हें मन्नू जी को भलमनसहतों की याद दिलाई है। किसी ने बिना ज्यादा संपर्क में आए हुए राजेन्द्र यादव को तमाम फतवे दे डाले हैं, केवल कानों-कान सुनी गुनी कनबतियों के द्वारा। ऐसे प्रसंगों में जमकर छीछालेदर की गई है। यह दिलचस्प है कि कुछेक लेखिकाएँ राजेन्द्र यादव के व्यक्ति विश्लेषण में विशिष्ट अर्थों की प्राप्ति के लिये इतनी आत्मुग्धता की शिकार हुईं कि मनोविज्ञान के पुरोधाओं-फ्रायड, युंग, एडलर से कई गुना आगे निकलती हुई दिखाई दीं। यह बात अलग है कि उस

मनोविज्ञानी चेतन और सुपरचेतन की पड़ताल में उनके स्वयं का विकृत मनोविज्ञान जरूरत से ज्यादा प्रस्फुटित हो गया। दरअसल यादव जी के बारे में उन्होंने यह कयास लगाए हैं कि अपूर्णता की विकृति से ग्रस्त व्यक्ति क्या क्या कर सकताहै ! किन्तुये क यासभ रस ाहिब हुए, इनमें सुचिंतित तथ्यात्मक विचारधारा का अभाव है। इसी अभाव के कारण यह कयास आत्मप्रलाप जैसे ज्यादा प्रतीत होते हैं।

एक ही व्यक्ति पर लोगों की परस्पर इतनी विरोधी और तीखी प्रतिक्रियाओं से कई प्रश्न उठते हैं। क्यों वह किसी के लियेमित्रहैं? क योंव हकिसीके लिए गुरु हैं ? क्यों वह किसी का गाइड है ? क्यों वह किसी के लिए पूर्ण बहिष्कार तिरस्कार का पात्र है ? क्यों वह किसी के लिये झूठा या छद्म ओढ़ने वाला छलिया है ?

इन सब पर गहराई से सोचने पर लगता है कि जो लोग राजेन्द्र यादव को निहित स्वार्थों (पुरस्कार, प्रकाशन....) के पूर्ण होने का जरिया बनाना चाहते थे, और इस कामनापूर्ति की आशा में अतिरेकी भावभंगिमाओं से उन्हें लुभाना चाह रहे थे, जब उन्हें इसमें सफलता न मिली, तब उनके लिए हंस का सम्पादक देहविमर्शी, खलनायक, राजनीतिक ... और भी न जाने क्या क्या हो गया है ! लेकिन जिन्होंने निःस्वार्थ भाव से उनके व्यक्तित्व में एक इंसान देखा, एक संवेदनशील विलक्षण रचनाकार देखा, रचनागत श्रेष्ठ स्तर के लिए किसी तरह का समझौता न करने वाला शख्श देखा, एकब हुर्ज्ञा चंतकद ेखा,व ेर ाजेन्द्रय ादव केम ुरीदह ोनेस ेब चन हींप ाएहैं ाक ई एक ने उनके पूरे जीवन संघर्षों द्वन्दों को देखते हुए इस संदर्भ में ईसा मसीह के कष्टप्रद संघर्षों बंधनों को याद किया है।

मेरीस मझम ेंइ सस बक ास ारय ह निकलता है कि लोग तरह-तरह के व्यूज़/विज़न लेकर राजेन्द्र यादव के जीवन में/संपर्क में आये। यथानुसार अपने मूल्यों को मान्यता/अमान्यता मिलने पर सुखानुभूति / दुख का पनपना स्वाभाविक ही था। अपने-अपने उद्देश्यों के आइने में जिसने राजेन्द्र यादव का जो अक्स देखा, जिस एंगिल से देखा, उसी की अभिव्यक्ति है तेइस लेखिकाएँ और राजेन्द्र यादव।

यहाँ कताबप ढ़क रम ुझेए ेसाल गा जैसे किसी सरल इंसान को नामियों, बदनामियों, आरोपों, लांक्षनों के कठघरे में खड़ा कर दिया जाये, और वह बिना किसी प्रतिवाद के सिर झुकाए हुए चुपचाप उन आरोपों को अपने ऊपर से गुजरते हुए देखता रहे। क्या यह दृष्टाभाव है ? या क्या यह फक्कड़ किस्म की फकीरी मौज है ? आखिरकार ढाई आखर प्रेम का पढ़ै ... तथा जाति पाँति पूछै नहिं कोई ... इन पंक्तियों को लिखने वाले रचनाकार ने जब अपने समय के प्रचलित ढाँचे का मुखर विरोध किया होगा, तो उसकी जद में आने वालों ने नाराजी में उस पर फूल बरसाए होंगे, यहीर ाजेन्द्रय ादवक े स ाथभ ीह ुआहै। इसकी तुलना हम उस शख्श से कर सकते हैं, जो स्वभावतः हर अच्छे बुरे आदमी का भला करता रहा, लेकिन लोगों ने उसे काँटों का ताज पहनाकर क्रूस पर लटका दिया। इस किताब को पढ़कर अनायास ही क्रूस पर लटके ईसा का स्मरण होने लगता है।

यह सुखद है कि इस किताब में वरिष्ठ एवं कनिष्ठ रचनाकारों में से वरिष्ठों ने तो कथ्य और लहजे के स्तर पर बाजी मारी ही है, लेकिन बीना उनियाल तथा रचना यादव जैसे नये चेहरों ने वरिष्ठ पीढ़ी को टक्कर देते हुए विशिष्ट उपस्थिति दर्ज कराई है। इनका एकदम नये लहजे का भावप्रवण लेखन गहराई से अपनी तरफ खींचता है। गीताश्री की भूमिका को भी इस श्रेणी में रखा जा सकता है। ◆

❑

कवयित्री एवं पत्रकार।
संपर्क :
Mobile -919990986868

दर्द की देवी : मीना कुमारी

सोलह श्रृंगार के साथ जब उन्होंने 'रुक जा रात, ठहर जा रे चंदा, बीते न मिलन की रैना' गाया तो दर्शक भूल गए कि वे सिर्फ परदे पर राजकुमार की बीमारी से परेशान हैं। लड़खड़ाती मदहोश करने वाली आवाज, याचक निगाहें जिन्हें सिर्फ और सिर्फ पति के साथ की दरकार है और सिर्फ प्रेम भरा साथ पाने के लिए शराब पी जाना! उस जमाने में एक स्त्री का शराब पी जाना। कहते हैं, दुख किसी को नहीं बांधता। लेकिनम ीनाक ु मारीक ा द ु खथ ा किह र किसी को बांध लेता था। उनके आंसू दर्शकों को अपने आंसू लगते थे। परदे पर अपनेपन की गमगीनी का साया ऐसा छाया कि वे हमेशा के लिए 'ट्रेजेडी क्वीन' के खिताब से नवाज दी गईं। किसी कलाकार के लिए यह बेहतरीन तमगा था, लेकिन जीवन के लिए इससे दुखदक ु छन हींह ोस कताथ ा।अ भिनय में निराशा का ऐसा कुशल मिलान था उनके व्यक्तित्व में कि यह दर्शकों के आंसू छलछला देने के लिए काफी था।

एक अगस्त 1932 को जब महजबीं बानो नाम की यह लड़की पैदा हुई थी तो किसी ने नहीं सोचा था कि वह पर्दे पर दुख या पर्याय बन जाएंगी। उनके दर्द को नापने का कोई पैमाना नहीं था, लेकिन जब वे अपनी आँखें उठाती थीं, तो दर्शकों का कलेजा मुंह को आ जाता था। यह दर्द उन्होंने अभिनय के लिए ओढ़ा नहीं था, बल्कि यह उनके जीवन से आया था। उनकी बेजोड़ फिल्मों में दिल

अपना प्रीत पराई, दिल एक मंदिर, पाकीजा, काजल, मंझली दीदी, बहू बेगम, भाभी की चूड़ियां और मैं चुप रहूंगी थी। लेकिन यह गिनती आखिरी गिनती नहीं है, क्योंकि बैजू बावरा, चित्रलेखा, चार दिल चार राहें, आरती ऐसीफ िल्मेंह ैं,ि जनमेंउ सकाअ लगह ी रूप दिखा था। नितांत घरेलू किरदार निभा कर भी वे उन दिनों पहले क्रम की अभिनेत्री थीं। बिलकुल सादे रोल, बिलकुल सादा मेकअप लेकिन उन्हें देख कर लगता था जैसे, वह वहीं हैं, वैसी ही हैं, जो रोल निभा रही हैं। उनके अभिनय मेंए कट ीसस ीच लतीथ ी।ह र किरदार के अंदर की टीस जिसे वह जी रही होती थीं, गहरे मन के कोने में भीतर ही भीतर। फिल्मों में मीना कुमारी दर्द की पूरी दास्तान कहती थीं। उस वक्त नूतन, मधुबाला का जमाना था, लेकिन मीना का अलग मुकाम था जो उन्हें अपनी समकालीन नायिकाओं से बिलकुल अलग करता था। कमाल अमरोही की मशहूर फिल्म पाकीजा को याद कीजिए। जिसमें उन्हें तवायफ होने के अजीब से द्वंद्व से गुजरना था। उस वक्त उनके कमाल से रिश्ते बहुत तनावपूर्ण थे, लेकिन यह तनाव उसके किसी दृश्य में दिखाई नहीं दिया। अभिनय के लिहाज से उन्होंने इस फिल्म में कई रंग जिए। जब राजकुमार अपने परिवार के लोगों के पूछने पर अपने बुलंद अंदाज में कहते हैं, 'इसका नाम पाकीजा है।' तब उनके चेहरे के भाव और आंखों की भावप्रवणता बताती है कि वह कितनी खुश हैं। लेकिन कितनी असहाय। उसके बाद कई नायिकाओं ने तवायफ के रोल किए लेकिन चलते-चलते कोई मिल गया था ... गाते हुए रेल के इंजन की सीटी सुन कर रुक जाना और फिर किसी अनजान राहगीर की याद में खो जाने का कमाल कोई नहीं दिखा पाया।

उनकी शख्सियत इतनी मुखर थी कि तब संवाद लेखक उन्हें जहन में रख कर

संवाद लिखा करते थे। वह खुद को सीन में जज्ब कर अपनी भावनाओं को जब्त कर लेती थीं। इसका कमाल काजल है। इस फिल्म में वह धर्मेंद्र की बहन बनी हैं। धर्मेंद्र के लिए उनकी भावनाएं जग जाहिरथ ीं ाव हउ नकें लएद ीवानीथ ीं। लेकिन जब बहन की हैसियत से धर्मेंद्र केस ामनेकैं मरेके स ामनेम ुखातिबह ुई, तो लगा इस भाई-बहन की जोड़ी को नजर न लगे। वह हमेशा हिंदुस्तानी औरत का किरदार करती रहीं। उनमें डूब गईं। जबर ाजकुमारक ाजलां फल्मम ेंछ ूल ेने दो नाजुक होंठो को गाते हैं तब मीना कुमारी के चेहरे के भाव देखने लायक होतेह ैं ाए कस् त्रीज ोम ायकेम ेंश्र ीकृष्ण के भक्ति पद गाती आई है और ससुराल में शराबी पति के झूठे प्रेम को बर्दाश्त कर रही है। वह ऐसी पीड़ा थी जो दर्शकों को मुट्ठियां कसमसाने पर मजबूर कर देती हैं। परदे पर उन्हें प्यार नहीं मिला और परदे के बाहर भी उनकी जिंदगी में कोई खास तबदीली नहीं आई। कमाल से उन्होंने प्यार की खातिर शादी की और उस प्यार के अलावा उन्हें कमाल से सब कुछ मिला। वह धर्मेंद्र के लिए एक तरह से पागल थीं। पर धर्मेंद्र ने उन्हें सिर्फ इस्तेमाल किया। मीना कुमारी ने धर्मेंद्र का करिअर बनाने में बहुत मदद की लेकिन धर्मेंद्र कामयाबी के शिखर पर पहुँच कर बदल गए।

वहब हुतस ाधारणघ ारस ेअ ाईथ ीं, इसलिए वह अपने मूल्य समझाती थीं। यही स्वभाव उनकी सबसे बड़ी कमज़ोरी बन गया। वह सभी पर विश्वास करती रहीं और लोग उन्हें धोखा देते रहे। जीवन में परदे पर वे दुख का अभिनय करती थीं और असली जिंदगी में उस पल को जीती रहती थीं। उसी दर्द का सोताउ नकेअ भिनयम ेंझ ारतार हताथ ा। उनकी जिंदगी में इतने आघात आए कि वे साहब, बीवी और गुलाम की छोटी बहू की तरह जाम में डूब गईं और वही उनकी मौत का कारण भी बना। वह शराब की इतनी आदी हो गईं थी कि धीरे-धीरे उसी में डूबती चली गईं। मीना चाहती थीं कि उनका पति हो, जो उन्हें खूब प्यार करे, बच्चे हों जिन्हें वे प्यार कर सके। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। उनका जीवन एक दुख भरी बदली की तरह उन पर छाया रहा और लिवर सिरोसिस उन्हें अभिनय की चकाचौंध भरी बेवफा दुनिया से उस दुनिया में ले गया जो इस संसार से बहुत दूर है। वे दुनिया छोड़ गईं मगर दिल में ऐसे बसी रहीं जैसे फूल की खुश्बू जेहन में बस जाती है। ◆

❑

■ **लेख :** बलवंत कौर

शिक्षा : एम.ए., पी.एच.डी (हिन्दी)
प्रकाशन : विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में लेख व समीक्षाएँ प्रकाशित
राजेन्द्र यादव के साथ ''देहरी भई विदेस'' (महिला लेखिकाओं के आत्मकथांश) का सम्पादन
'काश मैं विद्रोही होता' (राजेन्द्र यादव के विचारोत्तेजक लेखों का संकलन) का सम्पादन इसके अतिरिक्त
उर्दू तथा पंजाबी से हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित
सम्प्रति : मिरांडा हाउस दिल्ली विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर
सम्पर्क : २५१ भाई परमानंद कॉलोनी, दिल्ली ११०००९, भारत,
फोन : ९८६८८९२७२३, **ईमेल :** tobalwant@gmail.com

''बदलता समाज और आज का साहित्य''

पिछले कुछ समय से पूंजी के वर्चस्व, सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार और लिबरल अर्थव्यवस्था के कारण व्यक्ति और समाज कई तरह के संकटों से गुज़र रहा है। इन संकटों को रचना में अभिव्यक्त करना और भी जोखिम का काम है। पर इन संकटों के बीच आज की युवा पीढ़ी ने अपनी उपस्थिति जिस तरह से कथा साहित्य में दर्ज की है वह सराहनीय है। सराहनीय इसलिए भी क्योंकि बदलाव की इस आबो-हवा में ये नये रचनाकार संकटों को लेकर हाहाकार की मुद्रा में नहीं है। बल्कि वह इसे एक चुनौती की तरह ही ले रहे हैं ताकि वर्तमान से सामंजस्य बनाया जा सके। एक ऐसे वर्तमान से सामंजस्य जहाँ एक तरफप रम्परागतम ूल्यह ैंत ोद ूसरीत रफ तत्कालीन समय के दबाव। और जो यथार्थ सामने है वह भी सूचना माध्यमों की बदौलत मात्र छवि बन के रह गया है। सामने होने के बावजूद पकड़ में नहीं आ रहा है। एक फिसलन भरा यथार्थ। इस फिसलन भरे यथार्थ से आज का युवा लेखक जूझ रहा क्योंकि उसकी रचनात्मकता इससे प्रभावित हो रही है। किसी भी तरह के चमत्कार को ध्वस्त करती यह कहानियाँ समाज में व्याप्त कई अमानवीयताओं का साक्षात्कार करती हैं इसलिए इन की कहानियाँ एक नया प्रतिपक्ष रचती कहानियाँ हैं।

यहाँ अपनी थोड़ी सुविधा के लिए पहले ही स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि बदलते समाज को मैं केवल औरतों की नजर से देखना चाहूँगी। इसलिए नहीं कि मैं किसी स्त्रीवाद का गुणगान करना चाहती हूँ या मैं ऐसा मानती हूँ कि सिर्फ महिला लेखिकाएँ ही बदलाव पर नजर रखे हैं। बल्कि मेरा मानना है कि अब हमें उन की नज़र से बदलाव को देखना होगा जो अपना इतिहास खुद बना रहे हैं। चाहे वो स्त्री हो या दलित हो। बकौल राजेन्द्र यादव ये जो पिछले 15-20 साल में स्त्री और दलित विमर्श आया है इसने कहानियोंके स वरूपक ोि बलकुलब दल दिया है। यानि की आधार को बदल दिया है। इसलिए आवश्यक है। कि उन की नज़र से बदलाव और बदलते सम्बन्धों को देखा जाए। इसलिए मैं सिर्फ आज की पीढ़ी की उन स्त्री रचनाकारों को ही अपना आधार बना रही हूँ जिनके अभी एक या दो, संग्रह ही आए हैं। जैसे नीलाक्षी सिंह, पंखुरी सिन्हा, कविता, मनीषा, अल्पना वन्दना राग, शर्मिला वोहरा, जालान आदि।

ध्यान देने की बात है कि आज के सभी युवा रचनाकार छोटे कस्बों व गाँवों से आए हैं। अपनी पहचान की तलाश में। अपनी इस तलाश में बहुत संभव पीछे कीत रफद ेखना ।प ीछेइ सलिएन हींि क शहर व महानगर के बरअक्स पीछे सब कुछ अच्छा है। बल्कि इन का नयापन इसी में है कि ये युवा रचनाकर पीछे देखते जरूर हैं पर किसी भी तरह के नॉस्टेलजिया के शिकार नहीं हैं। लेकिन बड़े ताज्जुब की बात है कि स्त्री रचनाकारों की ज्यादातर कहानियाँ इस अच्छे या बुरे किसी भी तरह के नास्टेलजिया से मुक्त हैं कहीं भी मुड़ कर देखना नहीं चाहती। शायद वो इसलिए क्योंकि उन्हें समझ आ गया है कि इतिहास तो रचा जा चुका है और भविष्य ही एक ऐसी चीज़ है जिसे रच कर वो अपने होने को सिद्ध कर सकती हैं विकासके स ाथक दर्म ि मलास कतीह ैं। इसलिए कस्बाई या ग्रामीण मानसिकता से उबर चुकी हैं ये लेखिकाएँ। नीलाक्षी की प्रसिद्ध कहानी ''टेक बे त टेक न तो गो''ज ोउ नकेस ंग्रहप रिन्देक इ न्तजार सा'' में ''प्रतियोगिता'' नाम से संकलित है। ये कहानी छोटे से कस्बे पर आधारित होने के बावजूद कस्बाई मानसिकता से मुक्त है। दुलारी कस्बे में पली बढ़ी है पर बदलते वक्त में वह बाज़ार के तौर तरीकों को अपनी अस्मिता को साबित करती है और अपना वैकल्पिक अस्तित्व ढूंढती है किसी पुरानी व्यवस्था के तहत अपने व्यक्तित्व को पति की इच्छा अनुसार

घुला देने में यकीन नहीं रखती आगे देखती है। प्रतियोगिता ने उसे जीने का एक अपने को पाने का एक विकल्प दिया है। यहाँ बाजार में स्त्री के लिए बेहतर विकल्प है यह मैं बिलकुल नहीं कहना चाहती बल्कि मैं तो सिर्फ उस विकसित भविष्योन्मुख दृष्टिकोण को उभारना चाहती हूँ जिसके तहत वो अपना इतिहास रचने की कोशिश करतीं कस्बे में रह कर भी कस्बाई मानसिकता से मुक्त हैं इसलिए दुलारी के लिए ''वो कचरी और वो जलेबी उसकी दुकान (?) में बिकने वाली चीज़ें भर नहीं थीं, वे उसके होने की शर्त थीं'' मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानी ''कठपुतलियाँ'' में भी ''सुगना'' समाज परिवार व पंचायत के दबाव के बावजूद कठपुतली बनने से इन्कार करना, अपने जीवन का स्वयं निर्णय लेना। अपनी नियति का फ़ैसला खुद लेना। वह भी तब जब दोनों रास्ते खुला आमंत्रण दे रहें हो।

भविष्योन्मुख दृष्टि का ही फल है कि कविता ''उलटबाँसी'' में अपनी माँ के विवाह का समर्थन करती है और मनीषा प्रेत मुक्ति में प्रोफेसर साहब की शादी की पक्षधर बनती है। ''प्रेत-मुक्ति'' में अकेलेपन की नियति झेलता बुढ़ापा भीह ैअ ौरप ेमभ ी द ोनोंक ास ाथए क तरफ नये परिवार की अवधारणा को जन्म देता है तो दूसरी तरफ अकेलेपन रूपी प्रेतस ेम ुक्तक रताह ै ाट कराहटय हाँभ ी है क्योंकि हमारा समाज अभी इतना प्रगतिशील नहीं हुआ कि बुढ़ापे में अपने जीवन की पुन: शुरुआत करते किसी व्यक्ति को सहजता से ले सके।

दरअसल इन लेखिकाओं के सामने समस्या आगे या पीछे में से चुनाव करने की नहीं है बल्कि जो सामने है, जो आगे है उनमें से किस का चुनाव किया जाए इसकी है। शायद इसी लिए कविता की स्त्रियाँ िववाहअ ौर' 'लिवइ न रिलेशन'' में से लिव इन रिलेशन का चुनाव करती हैं। और इस चुनाव के दौरान अपने निर्णय पर कभी कशमकश या दुविधा भी इनके सामने आती है पर यह दुविधा इन की कोई कमज़ोरी नहीं है क्योंकि जो निर्णयल ेि लयाह ैउ सकोक ोईप छतावा यहाँ नहीं है बल्कि वैकल्पिक संसार रचने की प्रक्रिया में लिए गए निर्णय का आत्मालोचन या चिन्तन है।

पीछे मुड़ कर नहीं देखना ये तो तय है पर आगे भी कोई बना बनाया ढ़ांचा नहीं है इसलिए ये समय के अनुसार बदल तो रही हैं पर साथ ही समय को भी बदल रही हैं क्योंकि समय जो कुछ ''कानसूप'' और ''मालमून'' के नाम पर प्रस्तुत किया जा रहा है उनमें से कुछ का चुनाव कर बाकियों को ये रिजेक्ट भी कर रही हैं इसलिए यदि ये कहा जाए कि अपने समय को देखने का आलोचनात्मक विवेक इन के पास है तो ग़लत न होगा। इसी विवेक के बूते पर ये लेखिकाएँ विकास के नकारात्मक पहलुओं में भी कहानी तलाश लेती हैं। साथ ही ये आलोचनात्मक विवेक इन्हें अपनी रचनाप्रक्रिया से जूझने की समझ भी देता है जिसके कारण कहानी में नये-नये प्रयोग करने की जहमत यह पीढ़ी उठाती हैक हानीम ेंि नबन्ध,ि नबन्धम ेंक हानी, संस्मरण सब का समावेश हो जाता है वैसेभ ीब दलतेस मयम ेंज हाँस माजस े लेकर परिवार तक सब कुछ विखंड़ित हो रहा हो तो कहानी कैसे बच सकती है। इसलिए कहानी में अनेक विधाओं का समिश्रणह ोर हाह ै ज ोअ र्चनाव र्माके शब्दों में कहें तो आलोचकों के लिए दिक्कत तलब है क्योंकि कहानी अब उन के हाथ से निकलती जा रही है।

इन कहानियों की ख़ासियत है कि ये सिर्फ़ सहानुभूति के लिए रची गयी कहानियाँ नहीं हैं और न ही स्त्री का आदर्शीकरण करने की या महिमा मण्ड़ित करने की कोई कोशिश ही यहाँ दिखती है। ये उस दृष्टि की कहानियाँ हैं जिन्हें ये आभास हो गया है कि समाज तो अपने आप मुक्ति देने से रहा अगर मुक्ति दी भी तो कोई नई जकड़न साथ दे देगा इससे बेहतर है बदलते समय में अपनी मुक्ति के औजार स्वयं ही (सही या ग़लत) हासिल किए जाएं। अल्पना मिश्र मानती हैं कि वैसे भी ''व्यक्ति को अपने लिए जगह खुद बनानी चाहिए दूसरे कितने दिन तक किसी का हाथ पकड़ कर चलना सिखाएंगे'' (10) मुक्ति-प्रसंग कहानी में घर से बाहर नौकरी करना इस मुक्ति की राह में उठाया गया पहला कदम है। लेकिन समस्या है कि आर्थिक स्वालम्बन भी पूरी तरह से मुक्ति नहीं बन पा रहा। अब नई प्रकार की बेड़ियों ने उसे अपने में बाँध लिया है। क्योंकि स्त्री का नजरिया तो बदलते समय के अनुरूप बदला है पर उस नज़रिये के अनुरूप स्त्री के प्रति समाज का नजरिया नहीं बदला। इसलिए हमारा सामाजिक ढ़ाँचा कामकाजी स्त्रियों को पुरुषों की भाँति प्रोफेशनल नहीं होने देता जबकि उनसे ऐसे ही प्रोफेशनलिज्म की अपेक्षा की जाती है। घर और बाहर की कशमकश में जीती इस स्त्री के जीवन में सब कुछ होता है स्वयं अपने को छोड़ कर, अपनी ही लिस्ट में वो गायब होती हैं। इस रूप में यह स्त्री की अस्मिता और मुक्ति की कहानियाँ कही जा सकती है। इस नयी कथा पीढ़ी की विशेषता है कि यह स्त्री-चेतना के आरम्भिक दौर जैसी किसी हीनग्रन्थि से मुक्त है। इस रूप में स्त्री लेखिकाओं की ये कहानियाँ कुछ मौलिक कुछ अलग जीवन का विस्तार देती कहानियाँ हैं।'' ◆